अमङ्गलं वदन्तं च रुदन्तं शोककारिणम् ॥३५॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं चौरं च नरघातिनम्। पुंश्चलीपतिपुत्रौ च पुंश्चल्योदनभोजिनम् ॥३६॥
देवतागुरुविप्राणां वस्तुवित्तापहारिणम् । दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलम् ॥३७॥
पितृमातृविरक्तं च द्विजाश्वत्थविघातिनम् । सत्यघ्नं च कृतघ्नं च स्थाप्यस्याप्यपहारिणम् ॥३८॥
विप्रमित्रद्रोहमेवं क्षतं विश्वासघातकम् । गुरुदेवद्विजानां च निन्दकं स्वाङ्गघातकम् ॥३९॥
जीवानां घातकं चैव स्वाङ्गहीनं च निर्दयम्। व्रतोपवासहीनं च दीक्षाहीनं नपुंसकम् ॥४०॥
गलितव्याधिगात्रं च काणं[1] बधिरमेव च। पुल्कसं छिन्नलिङ्गं च सुरामत्तं सुरां तथा ॥४१॥
क्षिप्तं वमन्तं रुधिरं महिषं गर्दभं तथा। मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रूक्षिणं नृकपालिनम् ॥४२॥
चण्डवातं रक्तवृष्टिं वाद्यं वै वृक्षपातनम्। वृकं च सूकरं गृध्रं श्येनं कंकं च भल्लुकम् ॥४३॥
पाशं च शुष्ककाष्ठं च वायसं गन्धकं तथा ॥४४॥
प्रतिग्राहिब्राह्मणं च तन्त्रमन्त्रोपजीविनम् । वैद्यं च रक्तपुष्पं चाप्यौषधं तुषमेव च ॥४५॥
कुवार्तां मृतवार्तां च विप्रशापं च दारुणम्। दुर्गन्धिवातं दुःशब्दं राजाऽपश्यत्स वर्त्मनि ॥४६॥
मनश्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम्। वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो बभूव ह ॥४७॥
तथाऽपि राजा निःशंको ददर्श समराङ्गणम्। सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम् ॥४८॥

पति-पुत्र, पुंश्चली का भात खाने वाला, देवता, गुरु, विप्र की वस्तु और धन का अपहरण करने वाला, दान दी हुई वस्तु का अपहरण करने वाला, दस्यु, हिंसक, चुगुलखोर, खल (दुष्ट), पिता-माता से विरक्त रहने वाला, ब्राह्मण एवं पीपल का घाती, सत्यनाशक, कृतघ्न, धरोहर का अपहर्त्ता, ब्राह्मण और मित्र से द्रोह करने वाला, आहत, विश्वासघाती, गुरु, देवता और ब्राह्मण के निन्दक, अपने अंग का नाशक, जीवों का घातक, अंगहीन, निर्दयी, व्रत और उपवास से रहित, दीक्षाहीन, नपुंसक, गलितरोग-ग्रस्त शरीर वाला, काना, बहिरा, चाण्डाल, कटे लिंग वाला, सुरापान से मत्त, मद्यविक्रेता, रुधिर वमन करने वाला, भैंसा, गधा, मूत्र, विष्ठा, कफ, रुखा, नरमुण्डधारी, प्रचण्ड वायु, रुधिर की वर्षा, वाद्य, वृक्ष का गिरना, भेंड़िया, सूकर, गीध, बाज, कंक, भालू, फाँस, सूखा काष्ठ, कौआ, गन्धक, दान लेने वाला ब्राह्मण, तन्त्र-मन्त्र से जीविका चलाने वाला, वैद्य, रक्तपुष्प, औषध, भूसी, निन्दित समाचार, मृतक समाचार, भीषण ब्राह्मण-शाप, दुर्गन्धपूर्ण वायु और दुःशब्द, ये सब मार्ग में राजा ने देखे ॥२६-४६॥ इससे राजा का मन म्लान हो गया, प्राण क्षुब्ध होने लगे, वामांग फड़कने लगा और देह शिथिल हो गयी ॥४७॥ तथापि राजा निःशंक होकर समर भूमि की ओर देखने लगा और समस्त सेनाओं समेत रणांगण में

१क. यक्ष्मव्याधिनमे० ।

अवरुह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृगुम्। ननाम दण्डवद्भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तितः॥४९॥
आशिषं युयुजे रामः स्वर्गं याहीति वाञ्छितम्। तेषां सह्यं तद्बभूवुर्दुर्लङ्घ्या ब्राह्मणाशिषः॥५०॥
भृगुं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तत्क्षणात्। आरुरोह रथं तूर्णं नानायुधसमन्वितम्॥५१॥
नानाप्रकारवाद्यं च दुन्दुभिं मुरजादिकम्। वादयामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्॥५२॥
उवाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणां च संसदि। हितं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदां वरः॥५३॥

परशुराम उवाच

शृणु राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भव। विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः॥५४॥
स्वयं विद्वांश्च वेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुखात्। कथं दुर्बुद्धिरधुना सज्जनानां विहिंसना॥५५॥
त्वं पूर्वमहनो लोभान्निरीहं ब्राह्मणं कथम्। ब्राह्मणी शोकसंतप्ता भर्त्रा साधं गता सती॥५६॥
किं भविष्यसि ते भूप परत्रैवानयोर्वधात्। सर्वं मिथ्यैव संसारं पद्मपत्रे यथा जलम्॥५७॥
सत्कीर्तिश्चाथ दुष्कीर्तिः कथामात्रावशेषिता। विडम्बना वा किमतो दुष्कीर्तेश्च सतामहो॥५८॥
क्व गता कपिला त्वं क्व क्व विवादो मुनिः कुतः। यत्कृतं विदुषा राज्ञा न कृतं हालिकेन तत्॥५९॥

प्रविष्ट हुआ॥४८॥ वहाँ राम को सामने देख कर रथ से तुरन्त उतर पड़ा और सहसा उन्हें भूमि पर सहायक राजकुमारों समेत भक्तिपूर्वक दण्डवत्प्रणाम करने लगा॥४९॥ राम ने शुभाशिष प्रदान किया कि—'अभिलषित स्वर्ग प्राप्त करो।' यह उन लोगों के लिए सह्य हो गया क्योंकि ब्राह्मणों के आशीर्वाद अलंघ्य होते हैं॥५०॥ सहायक राजकुमारों के साथ राजा उसी समय भृगु को प्रणाम कर अनेक अस्त्रों से युक्त होकर शीघ्रता से रथ पर बैठा और अनेक प्रकार के वाद्यों समेत दुन्दुभि (नगाड़ा) एवं मृदंग बजवाया और ब्राह्मणों को धन दान दिया॥५१-५२॥ अनन्तर वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ राम ने राजाओं की उस सभा में राजा से कहा, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था॥५३॥

परशुराम बोले—हे राजन्! तुम धर्मात्मा, चन्द्रवंश में उत्पन्न और भगवान् विष्णु के अंश एवं विद्वान् दत्तात्रेय के शिष्य हो॥५४॥ तथा वेदवेत्ता के मुख से वेदों को सुन कर स्वयं भी विद्वान् हो। किन्तु सम्प्रति तुम्हारी दुर्बुद्धि कैसे हो गयी सज्जनों की हिंसा की॥५५॥ तुमने पहले लोभवश एक निरीह ब्राह्मण की हिंसा कैसे की, जिससे पतिव्रता ब्राह्मणी शोक से सन्तप्त होकर पति के साथ चली गयी॥५६॥ हे भूप! इन दोनों के वध करने से तुम्हें लोक-परलोक में क्या लाभ होगा? कमलपत्र पर स्थित जल की भाँति समस्त संसार मिथ्या है॥५७॥ प्राणी यहाँ केवल यश-अयश का भागी होता है और (जो कुछ करता है उसकी) कथा मात्र शेष रह जाती है। अहो सज्जनों को अयश प्राप्त करने की विडम्बना से क्या लाभ॥५८॥ वह कपिला कहाँ गयी, उसके निमित्त होने वाला विवाद कहाँ और वे मुनि कहाँ चले गये। (इससे यही कहना पड़ता है कि) एक विद्वान् राजा ने जैसा अनुचित कर्म किया, वैसा एक हलवाहा भी नहीं कर सकता॥५९॥ तुम्हें उपवास किये

त्वामुपोषितमीशं हि दृष्ट्वा तातो हि धार्मिकः। पारणां कारयामास दत्तं तस्य फलं त्वया ॥६०॥
अधीतं विधिवद्दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने। जगत्ते यशसा पूर्णमयशो वार्धके कथम् ॥६१॥
दाता बलिष्ठो धर्मिष्ठो यशस्वी पुण्यवान्सुधीः। कार्तवीर्यार्जुनसमो न भूतो न भविष्यति ॥६२॥
पुरातना वदन्तीति वन्दिनो धरणीतले। यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्तिरीदृशी ॥६३॥
दुर्वाक्यं दुःसहं राजंस्तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम्। संकटेऽपि सतां वक्त्राद्दुरुक्तिर्न विनिर्गता ॥६४॥
न ददामि दुरुक्तिं ते प्रकृतं कथयाम्यहम्। उत्तरं देहि राजेन्द्र महच्यं राजेन्द्रसंसदि ॥६५॥
सूर्यचन्द्रमनूनां च वंशजाः सन्ति संसदि। सत्यं वद सभायां च शृण्वन्तु पितरः सुराः ॥६६॥
शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसद्वक्तुमीश्वराः। पश्यन्तो हि समं सन्तः पाक्षिकं न वदन्ति च ॥६७॥
इत्युक्त्वा रेणुकेयश्च विरराम रणस्थले। राजा बृहस्पतिसमः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६८॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

शृणु राम हरेरंशो हरिभक्तो जितेन्द्रियः। श्रुतो धर्मो मुखाद्येषां त्वं च तेषां गुरोर्गुरुः ॥६९॥
कर्मणा[1] ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनाम्। स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद्ब्राह्मण उच्यते ॥७०॥

देख कर मेरे धार्मिक पिता ने तुम्हें भोजन कांराया, जिसका तुमने यह फल प्रदान किया ॥६०॥ तुमने स्वयं वेदाध्ययन किया है, ब्राह्मणों को प्रतिदिन धन दान किया है जिससे समस्त जगत् में तुम्हारा पूर्ण यश व्याप्त है किन्तु अब वृद्धावस्था में तुमने यह अयश क्यों प्राप्त किया ॥६१॥ क्योंकि 'दाता, बलवान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुण्यवान् एवं विद्वान् कार्तवीर्य्यार्जुन के समान न कोई हुआ और न होगा' ऐसा पृथ्वीतल पर पुराने वन्दीगण गाते हैं। जो पुराणों में प्रख्यात है, उसकी ऐसी अपकीर्ति कैसे हुई ॥६३॥ हे राजन्! जीवों का कटुवचन तीक्ष्ण अस्त्र से भी दुःसह होता है, पर कितना बड़ा संकट क्यों न हो, सज्जनों के मुख से कभी भी बुरी बात नहीं निकलती है ॥६४॥ मैं तुम्हें दुष्ट बचन नहीं कह रहा हूँ, केवल प्रासंगिक बात कह रहा हूँ। अतः हे राजेन्द्र! इस राजसभा के भीतर मुझे उत्तर प्रदान करो ॥६५॥ क्योंकि इस सभा में सूर्य, चन्द्र एवं मनु के वंशज विराजमान हैं अतः सभा में सत्य-सत्य कहो, जिससे देवता, पितर लोग सुनें और सत् असत् कहने के अधिकारी राजेन्द्रगण भी सुनें। सन्त लोग सब को समान भाव से देखते हुए कभी भी पक्षपात नहीं करते हैं ॥६६-६७॥ इतना कह कर उस रणभूमि में परशुराम चुप हो गए, अनन्तर बृहस्पति के समान राजा ने कहना आरम्भ किया ॥६८॥

कार्तवीर्य्यार्जुन बोले—हे राम! आप भगवान् के अंश, भगवद्भक्त एवं जितेन्द्रिय हैं और जिनके मुख से मैंने धर्म का श्रवण किया है, तुम उनके गुरु के गुरु हो ॥६९॥ जो कर्म से ब्राह्मण होकर उत्पन्न होता है, ब्रह्म की भावना करता है, अपने धर्म में निरन्तर लगा रहता है तथा शुद्ध है उसे 'ब्राह्मण' कहते हैं ॥७०॥ जो सदैव बाहर-

---

१ ख. °णा वाऽप्यसद्बुद्ध्या क°।

अन्तर्बहिश्च मननात्कुरुते कर्मनित्यशः । मौनी शश्वद्वदेत्काले यो वै स मुनिरुच्यते ॥७१॥
स्वर्णे लोष्टे गृहेऽरण्ये पंके सुस्निग्धचन्दने । समताभावना यस्य स योगी परिकीर्तितः ॥७२॥
सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत्समताधिया । हरौ करोति भक्तिं च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥७३॥
तपो धनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतरुर्यथा । तपस्या कामधेनुश्च सततं तपसि स्पृहा ॥७४॥
ऐश्वर्ये क्षत्रियाणां च वाणिज्ये च तथा विशाम् । शूद्राणां विप्रसेवैव स्पृहा वेदेष्वनिन्दिता ॥७५॥
क्षत्रियाणां च तपसि स्पृहाऽतीवाप्रशंसिता । ब्राह्मणानां विवादे च स्पृहाऽतीव विनिन्दिता ॥७६॥
रागी राजसिकं कार्यं[1] कुरुते कर्मरागतः । रागान्धो यो राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्तितः ॥७७॥
रागतः कामधेनुश्च मया वै याचिता मुने । को दोष एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः ॥७८॥
कुतः कस्य मुनेरस्ति कामधेनुस्त्वया विना । स्पृहा रणे वा भोगे वा युष्माकं च व्यतिक्रमः ॥७९॥
त्रिंशदक्षौहिणीं सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम् । निहत्याऽऽयान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने ॥८०॥
आत्मानं हन्तुमायान्तमपि वेदाङ्गपारगम् । न दोषो हनने तस्य न तेन ब्रह्महाऽभवम् ॥८१॥
प्रायश्चित्तं हिंसकानां न वेदेषु निरूपितम् । वधः समुचितस्तेषामित्याह कमलो भवः ॥८२॥

भीतर मनन करते हुए कर्म करता है और सदा मौन रह कर समय पर बोलता है, उसे 'मुनि' कहा जाता है ॥७१॥ सुवर्ण, मिट्टी, घर, वन, कीचड़ और अतिस्निग्ध चन्दन में जिसकी भावना समान रहती है, उसे 'योगी' कहा जाता है ॥७२॥ जो समान भाव से विष्णु को सभी जीवों में देखता है और भगवान् में भक्ति करता है, उसे 'हरिभक्त' कहा जाता है ॥७३॥ ब्राह्मणों का धन तप है, जो कल्पवृक्ष की भाँति (समस्त फलदायक) होता है और तपस्या कामधेनु रूप है अतः निरन्तर तप करने की इच्छा ब्राह्मणों की, क्षत्रियों की स्पृहा ऐश्वर्य के प्रति, वैश्यों की इच्छा व्यापार के प्रति और शूद्रों की स्पृहा ब्राह्मणों की सेवा के प्रति वेदों में प्रशंसीय कही गई है ॥७४-७५॥ तप करने की क्षत्रियों की इच्छा अत्यन्त अनुचित है और विवाद करने की ब्राह्मणों की स्पृहा अति निन्दित है ॥७६॥ रागी राग (अनुराग) वश राजस कार्य करता है, और रागान्ध होकर रजोगुण में लिप्त होने के कारण 'राजा' कहलाता है ॥७७॥ हे मुने ! मैंने भी राग के वश होकर कामधेनु की याचना की थी। अतः मुझ अनुरागी क्षत्रिय का दोष ही क्या हुआ ॥७८॥ तथा तुमको छोड़कर किस मुनि के पास कामधेनु है। रण या भोग के प्रति तुम्हारी इच्छा व्यतिक्रम (उलटी) है ॥७९॥ हे मुने ! तीस अक्षौहिणी सेना और तीन करोड़ राजाओं को मार कर जो एक मुझे मारने आये उसका सहन कैसे किया जाये ॥८०॥ अपने को मारने के लिए कोई वेद का निष्णात विद्वान् ही क्यों न आये, तो उसके मारने में कोई दोष नहीं है, इससे हम ब्रह्मघाती नहीं हैं ॥८१॥ क्योंकि हिंसकों के वध करने पर वेदों में कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उनका वध करना ही समुचित है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है

---

१ क. स्वर्गं ।

पित्रा ते निहता भूपा महाबलपराक्रमाः। इदानीं राजपुत्राश्च शिशवोऽत्र समागताः ॥८३॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्स्नां कर्तुं महीमिति। त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्यास्त्वं पालनं कुरु ॥८४॥
क्षत्रियाणां रणो धर्मो रणे मृत्युर्न गर्हितः। रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोके वेदे विडम्बना ॥८५॥
तपोधनानां विप्राणां वाग्बलानां युगे युगे। शान्तिः स्वस्त्ययनं कर्म विप्रधर्मो न संगरः ॥८६॥
क्षत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्च बलं विशाम्। भिक्षाबलं भिक्षुकाणां शूद्राणां विप्रसेवनम् ॥८७॥
हरौ भक्तिर्हरेर्दास्यं वैष्णवानां बलं हरिः। हिंसा बलं खलानां च तपस्या च तपस्विनाम् ॥८८॥
बलं वेषश्च वेश्यानां योषितां यौवनं बलम्। बलं प्रतापो भूपानां बालानां रोदनं बलम् ॥८९॥
सतां सत्यं बलं मिथ्या बलमेवासतां सदा। अनुगानामनुगमः स्वल्पस्वानां च संचयः ॥९०॥
विद्या बलं पण्डितानां धैर्यं साहसिनां बलम्। शश्वत्कुकर्मशीलानां गाम्भीर्यं साहसं बलम् ॥९१॥
धनं बलं च धनिनां शुचीनां च विशेषतः। बलं विवेकः शान्तानां गुणिनां बलमेकता ॥९२॥
गुणो बलं च गुणिनां चौराणां चौर्यमेव च। प्रियवाक्यं च कापट्यमधर्मः पुंश्चलीबलम् ॥९३॥
हिंसा च हिंस्रजन्तूनां सतीनां पतिसेवनम्। वरशापौ सुराणां च शिष्याणां गुरुसेवनम् ॥९४॥
बलं धर्मो गृहस्थानां भृत्यानां राजसेवनम्। बलं स्तवः स्तावकानां ब्रह्म च ब्रह्मचारिणाम् ॥९५॥
यतीनां च सदाचारो न्यासः संन्यासिनां बलम्। पापं बलं पातकिनामशक्तानां हरिर्बलम् ॥९६॥

तुम्हारे पिता ने महाबलवान् और महापराक्रमी राजाओं का हनन किया है, इस समय उन्हीं के राजकुमार बच्चे ये तुम्हारे सामने आये हैं ॥८३॥ अतः तुमने भी इक्कीस बार इस समस्त पृथिवी को निर्भूप करने की जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करो ॥८४॥ क्षत्रियों का धर्म युद्ध करना है, इसलिए युद्ध में उनकी मृत्यु होना निन्दित नहीं है। और ब्राह्मणों की युद्ध विषयिणी इच्छा भी लोक वेद दोनों में विडम्बना मात्र है ॥८५॥ इसलिए तपोधन वाले ब्राह्मणों का, जिनका वाग् बल प्रधान है, प्रत्येक युग में शान्ति समेत स्वस्त्ययन (मांगलिक) कर्म करना ही विप्र-धर्म है, युद्ध करना नहीं ॥८६॥ क्षत्रियों का युद्ध बल, वैश्यों का व्यापार बल, भिक्षुक (संन्यासी) का भिक्षा बल शूद्रों का ब्राह्मण-सेवा बल, हरिदास्यों का भगवान् में भक्ति करना बल, वैष्णवों का नारायण बल, दुष्टों का हिंसा बल, तपस्वियों का तप बल, वेश्याओं का वेशभूषा बल, स्त्रियों का यौवन बल, राजाओं का प्रताप बल, बालकों का रोदन बल, सज्जनों का सत्य बल, असज्जनों का सदा मिथ्या कहना बल, अनुगामियों का अनुगमन (पीछे चलना) बल, अल्प धन वालों का संचय बल, पण्डितों का विद्या बल, साहसियों का धैर्य बल, धनिकों और विशेषकर पवित्र रहने वालों का धन बल, शान्त पुरुषों का विवेक बल, गुणियों का एकता बल, गुणीलोगों का गुण बल, चोरों का चोरी बल और पुंश्चली स्त्रियों का कपटपूर्ण प्रिय बोलना तथा अधर्म करना बल है ॥८७-९३॥ हिंसक जीवों का हिंसा बल, सती स्त्रियों का पति-सेवा बल, देवों का वरदान और शाप बल, शिष्यों का गुरु-सेवा बल, गृहस्थों का धर्म बल, नौकरों का राज-सेवा बल, स्तुति करने वालों का स्तुति बल, ब्रह्मचारियों का ब्रह्म बल, यतियों का सदाचार बल, संन्यासियों का त्याग बल, पातकियों का पाप बल, असमर्थ लोगों का भगवान् बल हैं ॥९४-९६॥ पुण्यात्माओं का पुण्य बल, प्रजाओं का राजा बल,

पुण्यं बलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्बलम्। फलं बलं च वृक्षाणां जलजानां जलं बलम्॥९७॥
जलं बलं च सस्यानां मत्स्यानां च जलं बलम्। शान्तिर्बलं च भूपानां विप्राणां च विशेषतः॥९८॥
विप्रः शान्तो रणोद्योगी नैव दृष्टो न च श्रुतः। स्थिते नारायणे देवे[1] बभूवाद्य विपर्ययः॥९९॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विरराम रणाजिरे। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सद्यस्तूष्णीं बभूव ह॥१००॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे तीक्ष्णशस्त्रासिपाणयः। आरेभिरे रणं कर्तुं महावीरास्तदाज्ञया॥१०१॥
रणोन्मुखांश्च तान्दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः। समारेभे रणं कर्तुं मङ्गलो मङ्गलालयः॥१०२॥
शरजालेन राजेन्द्रो वारयामास तानपि। चिच्छिदुः शरजालं च जमदग्निसुतास्तदा॥१०३॥
राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं शतसूर्यप्रभं मुने। माहेश्वरेण मुनयश्चिच्छिदुश्चैव लीलया॥१०४॥
दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव राज्ञः संनाहमेव च॥१०५॥
न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वलाः। दधार शूलिनः शूलं मत्स्यराजजिघांसया॥१०६॥
शूलनिःक्षेपसमये वाग्बभूवाशरीरिणी। शूलं त्यजत विप्रेन्द्राः शिवस्याव्यर्थमेव च॥१०७॥
शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा। मत्स्यराजगलेऽस्त्येतत्सर्वावयवरक्षणम्॥१०८॥

वृक्षों का फल बल, जलोत्पन्नों का जल बल, सस्यों (धान्यों) का जल बल, मत्स्यों का जल बल, राजाओं और विशेषतया ब्राह्मणों का बल शान्ति है॥९७-९८॥ युद्ध के लिए प्रयत्न करने वाला शान्त ब्राह्मण न कहीं देखा गया है और न सुना गया है। नारायण देव के रहते ही ऐसा विपर्यय (उलटा) हो रहा है॥९९॥ उस रणांगण में इतना कहकर वह राजा चुप हो गया और उसकी बातें सुनकर वे भी तुरन्त चुप हो गये॥१००॥ अनन्तर तीक्ष्ण शस्त्र तलवार आदि हाथ में लिए राम के महावीर भ्राताओं ने उनकी आज्ञा से युद्ध करना आरम्भ कर दिया॥१०१॥ महाबली राजेन्द्र मत्स्यराज भी, जो मंगल एवं मंगल निवास रूप हैं, उन्हें रणोन्मुख देखकर युद्ध के लिए तैयार हो गया॥१०२॥ राजेन्द्र ने अपने बाण-जालों द्वारा उन्हें रोक दिया और जमदग्नि के पुत्रों ने भी उसी समय उसके बाण-जाल को काट दिया॥१०३॥ हे मुने! राजा ने सैकड़ों सूर्य के समान कान्तिपूर्ण दिव्यास्त्र का प्रयोग किया, जिसे मुनियों ने माहेश्वर अस्त्र द्वारा लीला की भाँति काट दिया॥१०४॥ अनन्तर मुनियों ने दिव्यास्त्र द्वारा राजा का बाण समेत धनुष, रथ, सारथी और कवच खण्ड-खण्ड करके गिरा दिया॥१०५॥ उस समय राजा को शस्त्र-रहित देखकर मुनिगण बहुत प्रसन्न हुए और मत्स्यराज का हनन करने के लिए उन लोगों ने शंकर का शूल प्रयोग करना चाहा॥१०६॥ उसी बीच जब वे शूल प्रयोग कर रहे थे, आकाश वाणी हुई—हे विप्रेन्द्र! शिव का यह शूल व्यर्थ नहीं जाता है अतः अभी इसका प्रयोग न करो। राजा को पहले समय में दुर्वासा ने दिव्य शिव-कवच प्रदान किया था, जो राजा के गले

---

१ क. विप्रे।

प्राणानां च प्रदातारं कवचं याचतं नृपम्।। तदा निक्षिप्तशूलं च जघान नृपतीश्वरम् ।।१०९।।
तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने। श्रुत्वैवाऽऽकाशवाणीं च शृङ्गी संन्यासवेषकृत् ।।११०।।
ययाचे कवचं भूपं जमदग्निसुतो महान्। राजा ददौ च कवचं ब्रह्माण्डविजयं परम् ।।१११।।
गृहीत्वा कवचं तच्च शूलेनैव जघान ह। पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः ।।
महाबलिष्ठो गुणवांश्चन्द्रवंशसमुद्भवः ।।११२।।

नारद उवाच

शिवस्य कवचं ब्रूहि मत्स्यराजेन यद्धृतम्। नारायण महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम ।।११३।।

नारायण उवाच

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शंकरस्य महात्मनः। ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम् ।।११४।।
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते। दत्त्वा षडक्षरं मन्त्रं [1]सर्वपापप्रणाशनम् ।।११५।।
स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम्। अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः ।।११६।।
यद्धृत्वा पठनाद्बाणः शिवत्वं प्राप लीलया। बभूव शिवतुल्यश्च यद्धृत्वा नन्दिकेश्वरः ।।११७।।
वीरश्रेष्ठो वीरभद्रो साम्बोऽभूद्धारणाद्यतः। त्रैलोक्यविजयी राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।।११८।।

में बँधा है और उसके समस्त अवयव की रक्षा करता है। प्रथम राजा से उस प्राणप्रद कवच को मांग लो, पश्चात् शूल का प्रयोग करो। हे मुने! उन लोगों ने शूल का प्रयोग कर दिया था इसलिए राजा के पास पहुँचकर वह शूल सैकड़ों खण्डों में होकर गिर गया। आकाशवाणी सुनकर जमदग्नि के पुत्र शृंगी संन्यासी ने वेष बनाकर राजा से कवच की याचना की। राजा ने ब्रह्माण्डविजय नामक वह कवच सहर्ष प्रदान किया ।।१०७-१११।। अनन्तर कवच लेकर उन्होंने शूल का प्रयोग किया, जिससे आहत होकर मत्स्यराज गिर गया, जो सैकड़ों चन्द्रों के समान मुख, वाला, महाबली, गुणवान् एवं चन्द्रवंश में उत्पन्न था ।।११२।।

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! मत्स्यराज ने शिव का जो कवच धारण किया था, वह मुझे बताने की कृपा करें, उसे सुनने का मुझे कौतूहल है ।।११३।।

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र! महात्मा शिव का ब्रह्माण्ड बिजय नामक कवच जो समस्त शरीर के अंगों की रक्षा करता है, तुम्हें बता रहा हूँ,सुनो। पहले समय में दुर्वासा ने विद्वान् मत्स्यराज को प्रथम षडक्षर मंत्र प्रदान किया था, जो समस्त पापों का नाश करता है ।।११४-११५।।देह में कवच के रहते हुए प्राणियों की मृत्यु नहीं हो सकती है, अस्त्र, शस्त्र, जल, अग्नि भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं, इसमें संशय नहीं ।।११६।। जिसे धारण कर पाठ करने से बाणासुर ने लीला की भांति शिवत्व प्राप्त किया, नन्दिकेश्वर शिव के समान हो गये, साम्ब वीरों में श्रेष्ठ तथा महावीर हुए तथा जिसे धारण कर स्वयं राजा हिरण्यकशिपु तीनों लोकों का विजेता हुआ ।।११७-११८।।

---

१. क. ओं नमः शिवायेति च ।

हिरण्याक्षश्च विजयी चाभवद्धारणाद्धि सः। यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो दुर्वासा विश्वपूजितः ॥११९॥
जैगीषव्यो महायोगी पठनाद्धारणाद्यतः। यद्धृत्वा वामदेवश्च देवलः पवनः स्वयम्
अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्चाप्यभवद्विश्वपूजितः ॥१२०॥
ॐ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदाऽवतु। ॐ नमः शिवायेति च स्वाहा भालं सदाऽवतु ॥१२१॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदाऽवतु। ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम्॥१२२॥
ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदाऽवतु ॥१२३॥
ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥१२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान्सदाऽवतु। ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥१२५॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मे रुद्राय स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं मैं श्रीमीश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥१२६॥
ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युंजयाय स्वाहा भ्रुवौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रींक्लीमीशानाय स्वाहा पार्श्वं सदाऽवतु ॥१२७॥
ॐ ह्रीमीश्वराय स्वाहा चोदरं पातु मे सदा। ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युंजयाय स्वाहा बाहू सदाऽवतु ॥१२८॥
ॐ ह्रीं श्रीं [1]क्लीमीश्वराय स्वाहा पातु करौ मम। ॐ महेश्वराय रुद्राय नितम्बं पातु मे सदा ॥१२९॥
ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु। ॐ सर्वेश्वराय शर्वाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु ॥१३०॥

जिसके धारण से हिरण्याक्ष विजयी हुआ, जिसके पाठ करने से दुर्वासा सिद्ध और विश्वपूजित हुए ॥११९॥ जिसे पढ़ने और धारण करने से जैगीषव्य महायोगी हुए तथा वामदेव, देवल, स्वयं पवन देव, अगस्त्य और पुलस्त्य विश्वपूजित हुए हैं ॥१२०॥ 'ओं नमः शिवाय' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'ओं नमः शिवाय स्वाहा' सदा भाल की रक्षा करे ॥१२१॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं शिवाय स्वाहा' नेत्र युगल की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं क्लीं हूं शिवाय नमः' मेरी नासिका की रक्षा करे ॥१२२॥ 'ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा' सदा कण्ठ की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा' दोनों कानों की रक्षा करे ॥१२३॥ 'ओं ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं महेशाय स्वाहा' सदा मेरे अधर की रक्षा करे ॥१२४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा' सदा केशों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की रक्षा करे ॥१२५॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं रुद्राय स्वाहा' मेरी नाभि की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे ॥१२६॥ 'ओं ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा भौंहों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं ईशानाय स्वाहा' सदा पार्श्व भाग की रक्षा करे ॥१२७॥ 'ओं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा' उदर की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा बाहुओं की रक्षा करे ॥१२८॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा' मेरे हाथों की रक्षा करे'। 'ओं महेश्वराय रुद्राय' नितम्ब की सदा रक्षा करे ॥१२९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा' चरण की रक्षा करे'। 'ओं सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा' चरणों की रक्षा करे ॥१३०॥ पूर्व दिशा में भूतेश, अग्निकोण में शंकर, दक्षिण

---

१. क. ०मीशानाय।

प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शंकरः। दक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां स्थाणुरेव च ॥१३१॥
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः। उत्तरे गिरिशः पातु चैशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥१३२॥
ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु चाधो मृत्युंजयः स्वयम्। जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे सदा ॥१३३॥
पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तं वै भक्तवत्सलः। इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् ॥१३४॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवति निश्चितम्। यदि स्यात्सिद्धकवचो रुद्रतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥१३५॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् ॥१३६॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१३७॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। सर्वज्ञः सर्वसिद्धेशो मनोयायी भवेद्ध्रुवम् ॥१३८॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः शंकरप्रभुम्। शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१३९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शंकरकवचकथन
नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

में रुद्र, और नैर्ऋत्य में स्थाणु मेरी रक्षा करें॥१३१॥ पश्चिम में खण्डपरशु, वायव्य में चन्द्रशेखर, उत्तर में गिरीश, ईशान में स्वयं ईश्वर रक्षा करें॥१३२॥ ऊपर की ओर मृड, नीचे स्वयं मृत्युञ्जय और जल, स्थल, अन्तरिक्ष, शयन, जागरण में मुझ भक्त की भक्तवत्सल पिनाकी प्रेम से रक्षा करें। हे वत्स! इस भाँति मैंने तुम्हें परम अद्भुत कवच बता दिया॥१३३-१३४॥ दश लाख जप करने से इसकी निश्चित सिद्धि होती है। यदि सिद्धकवच हो जाये तो निश्चित ही रुद्र के समान हो जाता है॥१३५॥ स्नेहवश मैंने यह कवच तुम्हें बता दिया है, किसी से कहना नहीं। काण्वशाखोक्त यह कवच अति गोप्य और अति दुर्लभ है॥१३६॥ सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय आदि सभी यज्ञ इस कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं॥१३७॥ इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त, सर्वज्ञाता, समस्त सिद्धियों का ईश तथा मन के समान वेगगामी होता है॥१३८॥ इस कवच को बिना जाने जो प्रभु शंकर की सेवा करता है, सौ लाख जप करने पर भी उसका मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है॥१३९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में
शंकरकवचकथन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः । राजेन्द्रान्प्रेषयामास युद्धशास्त्रविशारदान् ॥१॥
बृहद्बलं सोमदत्तं विदर्भं मिथिलेश्वरम् । निषधाधिपतिं चैव मगधाधिपतिं तथा ॥२॥
आययुः समरे योद्धुं जामदग्न्यं महारथाः । त्रितयाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह नारद ॥३॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे वीरास्तीक्ष्णास्त्रपाणयः । वारयामासुरस्त्रैश्च तानेव रणमूर्धनि ॥४॥
ते वीराः शरजालेन दिव्यास्त्रेण प्रयत्नतः । वारयामासुरेकैकं भ्रातृवर्गान्भृगोस्तथा ॥५॥
आययौ समरे शीघ्रं दृष्ट्वा तांश्च पराजितान् । पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः ॥६॥
चिक्षेप नागपाशं च जामदग्न्यो महाबलः । चिच्छेद तं गारुडेन सोमदत्तो महाबलः ॥७॥
भृगुः शंकरशूलेन सोमदत्तं जघान ह । बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिभिस्तथा ॥८॥
मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या वै नैषधं तथा । मागधं चरणोद्घातैरस्त्रजालेन सैनिकान् ॥९॥
निहत्य निखिलान्भूपान्संहाराग्निसमो रणे । दुद्राव कार्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः ॥१०॥
दृष्ट्वा तं योद्धुमायान्तं राजानश्च महारथाः । आययुः समरं कर्तुं कार्तवीर्यं निवार्य च ॥११॥

अध्याय ३६

नारायण बोले—हे नारद ! मत्स्यराज के मारे जाने पर युद्धनिपुण राजा ने युद्धशास्त्र में पारंगत राजेन्द्रों—बृहद्बल, सोमदत्त, विदर्भ, मिथिलेश्वर, निषधेश्वर तथा मगधेश्वर को भेजा। नारद! तीन अक्षौहिणी सेना लेकर उन लोगों ने जमदग्नि-पुत्र के साथ युद्ध करने के लिए आये ॥१-३॥ तीक्ष्ण अस्त्र हाथों में लिए राम के सभी वीर भ्राताओं ने रणक्षेत्र में अपने अस्त्रों द्वारा उन्हें रोक दिया ॥४॥ उन वीरों ने भी बाण-समूह और दिव्य अस्त्रों द्वारा भृगु के भ्राताओं को क्रमशः एक-एक करके रोक दिया ॥५॥ भ्राताओं को पराजित देखकर भृगु स्वयं हाथ में पिनाक धनुष लिए प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भांति देदीप्यमान होते हुए रणभूमि में आ गये ॥६॥ अनन्तर महाबली राम ने नागपाश का प्रयोग किया। महाबलवान् सोमदत्त ने उसे गरुडास्त्र से काट दिया ॥७॥ अनन्तर भृगु ने शंकर-शूल द्वारा सोमदत्त का हनन कर दिया। उसी भाँति गदा से बृहद्बल का, मुष्टियों से विदर्भ का, मुद्गर से मैथिल का, शक्ति से नैषध का, चरण-प्रहार से मगधेश्वर का तथा अस्त्रों के समूह से सैनिकों का वध किया ॥८-९॥ रण में संहाराग्नि की भाँति महाबली राम ने समस्त भूपों को मार कर कार्त्तवीर्य की ओर दौड़े ॥१०॥ महाराथी राजाओं ने भृगु को युद्ध करने के लिए आते हुए देख कर कार्त्तवीर्य को हटाकर स्वयं युद्ध करना आरम्भ किया ॥११॥ उनमें सौ कान्यकुब्ज, सौ सौराष्ट्र, सौ राष्ट्रीय, सौ

कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राः शतशस्तथा। राष्ट्रीयाः शतशश्चैव वीरेन्द्राः शतशस्तथा ॥१२॥
सौम्या[1] वाङ्गाश्च शतशो महाराष्ट्रास्तथा दश। तथा गुर्जरजातीयाः कलिङ्गाः शतशस्तथा ॥१३॥
कृत्वा ते शरजालं च [2]भृगुं चिच्छिदुरेव च। तं छित्वाऽभ्युत्थितो रामो नीहारमिव भास्करः ॥१४॥
त्रिरात्रं युयुधे रामस्तैः सार्धं समराजिरे। द्वादशाक्षौहिणीं सेनां तथा चिच्छेद पर्शुना ॥१५॥
रम्भास्तम्भसमूहं च यथा खड्गेन लीलया। छित्त्वा सेनां भूपवर्गं जघान शिवशूलतः ॥१६॥
सर्वांस्तान्निहतान्दृष्ट्वा सूर्यवंशसमुद्भवः। आजगाम सुचन्द्रश्च लक्षराजेन्द्रसंयुतः ॥१७॥
द्वादशाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह संयुगे। कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथा रणे ॥१८॥
भृगुः शंकरशूलेन नृपलक्षं निहत्य च। द्वादशाक्षौहिणीं सेनामहन्वै पर्शुना बली ॥१९॥
निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली। नागास्त्रं प्रेरयामास निर्हृतं तं भृगुः स्वयम् ॥२०॥
नागपाशं च चिच्छेद गारुडेन नृपेश्वरः। जहास च भृगुं राजा समरे च पुनः पुनः ॥२१॥
भृगुर्नारायणास्त्रं च चिक्षेप रणमूर्धनि। अस्तं ययौ तं निहन्तुं शतसूर्यसमप्रभम् ॥२२॥
दृष्ट्वाऽस्त्रं नृपशार्दूलश्चावरुह्य रथात्क्षणात्। न्यस्तशस्त्रः प्राणमच्च स्तुत्वा नारायणं शिवम् ॥२३॥
तमेव प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिकम्। अस्त्रराजो भगवतो रामः संप्राप विस्मयम् ॥२४॥

वीरेन्द्र (प्रधानवीर) सौ सौम्य, सौ बंगाल के, दस सौ महाराष्ट्र के, सौ गुजरात एवं कलिंग देश के राजा थे ॥१२-१३॥ उन लोगों ने बाणों का जाल बनाकर परशुराम को छाप लिया, किन्तु राम उसे काट कर, कुहासे को काटकर निकलते हुए सूर्य की भाँति ऊपर उठ गये ॥१४॥ समरांगण में राम ने उन राजाओं के साथ तीन रात्रि तक युद्ध किया—फरसे से बारह अक्षौहिणी सेना को काट डाला। कदली के स्तम्भ-समूह को खड्ग से काटने की भांति उन्होंने सैनिकों को लीलापूर्वक काटने के उपरान्त शिवशूल द्वारा राजाओं के समूह को मार डाला ॥१५-१६॥ उन सबको निहत देखकर राजा सुचन्द्र, जो सूर्यवंश में उत्पन्न था, एक लाख राजाओं को साथ लेकर वहाँ युद्ध करने के लिए आ गया ॥१७॥ युद्ध में राजा के साथ बारह अक्षौहिणी सेना थी। सिंह के ऊपर सिंह के आक्रमण करने की भाँति राम ने उस रण में क्रुद्ध होकर युद्ध किया ॥१८॥ बलवान् भृगु ने शंकर के शूल से राजा के एक लाख राजाओं को मारकर उनकी बारह अक्षौहिणी सेना को भी फरसे से काटकर गिरा दिया ॥१९॥ सेनाओं को मारने के अनन्तर उन्होंने सुचन्द्र से युद्ध करना आरम्भ किया। बली भृगु ने स्वयं उसके ऊपर नागास्त्र का प्रयोग किया, जिसे उस नृपेश्वर ने गारुड अस्त्र से काट दिया। और उस युद्ध में वह राजा भृगु का बार-बार उपहास करने लगा ॥२०-२१॥ यह देखकर भृगु ने रणस्थल में उस पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया, जो सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति पूर्ण था ॥२२॥ वह राजसिंह उस अस्त्र को आते हुए देख कर उसी क्षण से रथ से उतरकर भूमि पर खड़ा हो गया और शस्त्ररहित होकर नारायण और शिव की स्तुतिपूर्वक उसने उसे प्रणाम किया ॥२३॥ उसे प्रणत देख कर वह अस्त्रराज राजा को छोड़ कर नारायण के समीप चला गया। इसे देख राम को अति आश्चर्य

१क० सौवीराङ्गा० । २ख० भृगुश्चिच्छेद तत्क्षणम्।

भृगुः शक्तिं च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा। गदां पशुं च कोपेन चिक्षिपे तज्जिघांसया॥२५॥
जग्राह काली तान्सर्वान्सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता। चिक्षेप शिवशूलं स नृपमाल्यं बभूव सः॥२६॥
ददर्श पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम्। वहन्तीं मुण्डमालां च विकटास्यां भयंकरीम्॥२७॥
विहाय शस्त्रमस्त्रं च पिनाकं च भृगुस्तदा। तुष्टाव तां महामायां भक्तिनम्रात्मकंधरः २८॥

परशुराम उवाच

नमः शंकरकान्तायै सारायै ते नमो नमः। नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नमः॥२९॥
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः। नमोऽस्तु ते जगन्मात्रे कारणायै नमो नमः॥३०॥
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि। त्वत्पादौ शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थिकां कुरु॥३१॥
त्वयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः। त्वं प्रसन्ना भव शुभे मां भक्तं भक्तवत्सले॥३२॥
युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा। तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि वरानने॥३३॥
रेणुकेयस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाऽभवदम्बिका। मा भैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत॥३४॥
एतद्भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। महाभयात्समुत्तीर्णः स भवेदेव लीलया॥३५॥
स पूजितश्च त्रैलोक्ये तत्रैव विजयी भवेत्। ज्ञातिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्दकः॥३६॥
एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा भृगुं धर्मभृतां वरम्। आगत्य कथयामास रहस्यं राममेव च॥३७॥

हुआ॥२४॥ अनन्तर भृगु ने क्रुद्ध होकर उसका हनन करने के लिए शक्ति, मूसल, तोमर, पट्टिश, गदा और फरसे का प्रयोग किया, किन्तु सुचन्द्र के रथ पर स्थित काली ने उन सबको पकड़ लिया। राम ने शिव-शूल का प्रयोग किया, वह राजा के पास पहुँच कर उनके कण्ठ की माला हो गया॥२५-२६॥ अनन्तर राम ने जगज्जननी काली को देखा, जो मुण्डमाला धारण किये विकट मुख एवं भीषण रूप वाली थीं॥२७॥ भृगु ने तुरन्त शस्त्र, अस्त्र और पिनाक को अलग रख कर भक्ति से कन्धे झुकाये हुए, उस महामाया की स्तुति करना आरम्भ किया॥२८॥

परशुराम बोले—शंकर की कान्ता को नमस्कार है, सारभाग रूप को बार-बार नमस्कार है, दुर्गति-नाशिनी को नमस्कार है, महामाया को बार-बार नमस्कार है॥२९॥ जगत् की धात्री को नमस्कार है, जगत् का निर्माण करने वाली को नमस्कार है। जगत् की माता को नमस्कार है और कारण रूप आपको बार-बार नमस्कार है॥३०॥ हे सृष्टि का संहार करने वाली जगत् की माता! प्रसन्न हो जाओ, मैं तुम्हारे चरण की शरण में हूँ, मेरी प्रतिज्ञा सफल करो॥३१॥ तुम्हारे विमुख रहने पर मुझे रक्षित रखने में कौन समर्थ हो सकता है। अतहेः शुभे! हे भक्तवत्सले! मुझ भक्त पर तुम प्रसन्न हो जाओ॥३२॥ हे वरानने! पूर्व समय तुम लोगों ने शिव-लोक में मुझे वरदान दिया था, उसे सफल करने की कृपा करो॥३३॥ उपरान्त रेणुका-पुत्र राम की ऐसी स्तुति सुन कर अम्बिका देवी प्रसन्न हो गयीं। 'मत डरो' ऐसी आकाशवाणी हुई और वे उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गयीं॥३४॥ भृगुरचित इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करेगा वह महान् भय से लीला पूर्वक पार हो जायगा॥३५॥ वह तीनों लोक में पूजित एवं विजयी होगा, ज्ञानियों में श्रेष्ठ और शत्रुदल का मर्दन करेगा॥३६॥ इसी बीच धार्मिकश्रेष्ठ भृगु के समीप ब्रह्मा आये और उनसे समस्त रहस्य बताया॥३७॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्वमेव च। सुचन्द्रजयहेतुं च प्रतिज्ञासार्थकाय च ॥३८॥
दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा। सुचन्द्रायैव कवचं भद्रकाल्या सुदुर्लभम् ॥३९॥
कवचं भद्रकाल्याश्च देवानां च सुदुर्लभम्। कवचं तद्गले यस्य सर्वशत्रुविमर्दकम् ॥४०॥
अतीव पूज्यं शस्तं च त्रैलोक्यजयकारणम्। तस्मिन्स्थिते च कवचे कस्त्वं जेतुमलं भुवि ॥४१॥
भृगुर्गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृपम्। सूर्यवंशोद्भवो राजा दाता परमधार्मिकः ॥४२॥
प्राणांश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति निश्चितम् ॥४३॥
भृगुः संन्यासिवेषेण गत्वा राजान्तिकं मुने। भिक्षां चकार मन्त्रं च कवचं परमाद्भुतम् ॥४४॥
राजा ददौ च तन्मन्त्रं कवचं परमादरात्। ततः शंकरशूलेन तं जघान नृपं भृगुः ॥४५॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगुकार्तवीर्ययुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

कवचं श्रोतुमिच्छामि तां च विद्यां दशाक्षरीम्। नाथ त्वत्तो हि सर्वज्ञ भद्रकाल्याश्च सांप्रतम् ॥१॥

ब्रह्मा बोले—हे महाभाग! हे राम! मैं तुम्हें पहले का एक रहस्य बता रहा हूँ, जो सुचन्द्र को जीतने का कारण है एवं प्रतिज्ञा को सफल करेगा, सुनो। पूर्वकाल में दुर्वासा ने दश अक्षर की महाविद्या और भद्रकाली का अति दुर्लभ कवच सुचन्द्र को प्रदान किया था ॥३८-३९॥ भद्रकाली का कवच देवों के लिए भी अति दुर्लभ है। समस्त शत्रुओं का मर्दन करने वाला वह कवच, जो त्रैलोक्य में अत्यन्त पूजित, प्रशस्त और तीनों लोकों के विजय का कारण है, जिसके गले में बँधा रहेगा, उस तुमको भूतल में जीतने के लिए भला कौन समर्थ हो सकता है? ॥४०-४१॥ अतः हे भृगो! उसे राजा से मांगने के लिए तुम जाओ और उसकी प्रार्थना करो। राजा सूर्य वंश में उत्पन्न, दाता और परम धार्मिक है। वह प्राण, कवच और मंत्र आदि सब कुछ तुम्हें निश्चित दे देगा ॥४२-४३॥ हे मुने! भृगु ने संन्यासी के वेष में राजा के पास जाकर मंत्र एवं परमाद्भुत कवच की याचना की ॥४४॥ राजा ने परम आदर-पूर्वक उन्हें मन्त्र समेत कवच प्रदान किया। जिससे भृगु ने शिव शूल द्वारा उस राजा को मार दिया ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में भृगुकार्त्तवीर्य्य-युद्धवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

अध्याय ३७

नारद बोले—हे नाथ! हे सर्वज्ञ! मैं इस समय भद्रकाली का कवच और वह दशाक्षरी विद्या आपसे जानना चाहता हूँ, बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम्। गोपनीयं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति च दशाक्षरीम्। दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥३॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा। पञ्चलक्षजपेनैव पठन्कवचमुत्तमम् ॥४॥
बभूव सिद्धकवचोऽप्ययोध्यामाजगाम सः। कृत्स्नां हि पृथिवीं जिग्ये कवचस्य प्रसादतः ॥५॥

नारद उवाच

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा। अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहि मे प्रभो ॥६॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम्। नारायणेन यद्दत्तं कृपया शूलिने पुरा ॥७॥
त्रिपुरस्य वधे घोरे शिवस्य विजयाय च। तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने ॥८॥
दुर्वाससा च यद्दत्तं सुचन्द्राय महात्मने। अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥९॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीमिति लोचने ॥१०॥
ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकां मे सदाऽवतु। क्लीं कालिके रक्ष स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु ॥११॥
क्लीं भद्रकालिके स्वाहा पातु मेऽधरयुग्मकम्। ॐह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु ॥१२॥

नारायण बोले—हे नारद! मैं तुम्हें दशाक्षरी विद्या तथा वह गोपनीय कवच, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है, बता रहा हूँ, सुनो ॥२॥

'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' यही दशाक्षरी विद्या है, जिसे सूर्यग्रहण के समय पुष्कर में दुर्वासा ने राजा को प्रदान किया था ॥३॥ दश लाख जप करके उन्होंने पूर्वकाल में इस मंत्र की सिद्धि प्राप्त की थी और पाँच लाख जप करके पाठ करते हुए परमोत्तम कवच को सिद्ध किया था ॥४॥ सिद्धकवच होने पर वे अयोध्या आये थे और इसी कवच के प्रभाव से समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त किया था ॥५॥

नारद बोले—हे प्रभो! मैं तीनों लोकों में दुर्लभ दशाक्षरी विद्या सुन ली, किन्तु अब कवच सुनना चाहता हूँ, अतः उसे कहने की कृपा करें ॥६॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र! मैं तुम्हें वह परम अद्भुत कवच बता रहा हूँ, जिसे पूर्व समय नारायण ने कृपया शिव को दिया था ॥७॥ उसी से त्रिपुरासुर का घोर वध होने से उनका विजय हुआ था। हे मुने! उसे ही पूर्व काल में शिव ने दुर्वासा को दिया था ॥८॥ और दुर्वासा ने महात्मा सुचन्द्र को दिया है, जो अत्यन्त गुप्ततर तथा तत्त्व समेत समस्त मंत्रों का शरीरस्वरूप है ॥९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'क्लीं' कपाल की रक्षा और 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं' दोनों नेत्रों की रक्षा करें ॥१०॥ 'ओं ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा' सदा मेरी नासिका की रक्षा करे, 'क्लीं कालिके रक्ष रक्ष स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे ॥११॥ 'क्लीं भद्रकालिके स्वाहा' मेरे दोनों ओंठों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' सदा कण्ठ की रक्षा करे ॥१२॥ 'ओं ह्रीं कालिकायै

ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा कर्णयुग्मं सदाऽवतु। ॐक्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा स्कन्धं पातु सदा मम॥१३॥
ॐक्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा मम वक्षः सदाऽवतु। ॐ क्लीं कालिकायै स्वाहा मम नाभिं सदाऽवतु॥१४॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा मम पृष्ठं सदाऽवतु। रक्तबीजविनाशिन्यै[1] स्वाहा हस्तौ[2] सदाऽवतु॥१५॥
ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥१६॥
प्राच्यां पातु महाकाली[3] चाग्नेय्यां रक्तदन्तिका। दक्षिणे पातु चामुण्डा नैर्ऋत्यां पातु कालिका॥१७॥
श्यामा च वारुणे पातु वायव्यां पातु चण्डिका। उत्तरे विकटास्या चाप्यैशान्यां साट्टहासिनी॥१८॥
पातूर्ध्वं लोलजिह्वा सा मायाद्या पात्वधः सदा। जले स्थले चान्तरिक्षे पातु विश्वप्रसूः सदा॥१९॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वेषां कवचानां च सारभूतं परात्परम्॥२०॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा [3]सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः। कवचस्य प्रसादेन मान्धाता पृथिवीपतिः॥२१॥
प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह। यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरिः पिप्पलायनः॥२२॥
यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वसिद्धेश्वरो भवेत्। महादानानि सर्वाणि तपांस्येवं व्रतानि च॥
निश्चितं कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२३॥

स्वाहा' सदा दोनों कानों की रक्षा करें। 'ओं क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा' मेरे कन्धों की रक्षा करे॥१३॥ 'ओं क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा' सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'ओं क्लीं कालिकायै स्वाहा' सदा मेरी नाभि की रक्षा करे॥१४॥ 'ओं ह्रीं कालिकायै स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे, 'रक्तबीजनाशिन्यै स्वाहा' सदा हाथों की रक्षा करे॥१५॥ 'ओं ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा' सदा चरणों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे॥१६॥ पूर्व में महाकाली, अग्निकोण में रक्तदन्तिका, दक्षिण में चामुण्डा, नैर्ऋत्य में कालिका, पश्चिम में श्यामा, वायव्य में चण्डिका, उत्तर में विकटास्या (विकट मुख वाली) और ईशान में अट्टहासिनी रक्षा करें॥१७-१८॥ ऊपर की ओर लोलजिह्वा रक्षा करें, नीचे की ओर मायाद्या और जल, स्थल एवं अन्तरिक्ष (आकाश) में विश्वप्रसू (जगज्जननी) रक्षा करें॥१९॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह कवच बता दिया, जो समस्त मन्त्र-समुदाय का शरीर, सभी कवचों का सारभाग एवं परात्पर है॥२०॥ इसी के प्रभाव से राजा सुचन्द्र सातों द्वीपों के अधीश्वर एवं मान्धाता पृथ्वीपति हुए॥२१॥ प्रचेता और लोमश मुनि भी इसी कारण सिद्ध हुए और सौभरि एवं पिप्पलायन योगियों में श्रेष्ठ हुए॥२२॥ यदि कोई सिद्धकवच हो जाता है, तो वह समस्त सिद्धियों का अधीश्वर होता है। समस्त महादान, तप और व्रत इस कवच की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं॥२३॥

१क गुह्यं स०। २क. भद्रका०। ३क. सुरथो।

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कालीं जगत्प्रसूम्। शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥२४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भद्रकालीकवचनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

सुचन्द्रे पतिते ब्रह्मन्राजेन्द्राणां शिरोमणौ। अगमत्पुष्कराक्षस्तु सेनात्र्यक्षौहिणीयुतः ॥१॥
सूर्यवंशोद्भवो राजा सुचन्द्रतनयो महान्। महालक्ष्मीसेवकश्च लक्ष्मीवान्सूर्यसंनिभः ॥२॥
महालक्ष्म्याश्च कवचं गले यस्य मनोहरम्। परमैश्वर्यसंयुक्तस्त्रैलोक्यविजयी ततः ॥३॥
तं दृष्ट्वा भ्रातरः सर्वे रैणुकेयस्य धीमतः। आययुः समरं कर्तुं नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥४॥
राजेन्द्रः शरजालेन च्छादयामास तांस्तथा। चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराश्चैव लीलया ॥५॥
चिच्छिदुः स्यन्दनं राज्ञस्ते वीराः पञ्चबाणतः। सारथिं पञ्चबाणेन रथाश्वं दशबाणतः ॥६॥
तद्धनुः सप्तबाणेन तूर्णं वै पञ्चबाणतः। चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान्विप्राः शंकरशूलतः ॥७॥

अतः इस कवच को बिना जाने जगज्जननी भद्रकाली की जो आराधना करता है, उसका मंत्र सौ लाख जपा जाने पर भी सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥२४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में भद्रकाली-कवच कथन-नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! राजा सुचन्द्र के मरने पर राजा पुष्कराक्ष युद्ध करने के लिए रणभूमि में आया, जो राजाओं में शिरोमणि था। उसके साथ तीन अक्षौहिणी सेना थी ॥१॥ वह राजा सूर्यवंश में उत्पन्न, सुचन्द्र का बड़ा पुत्र, महालक्ष्मी का सेवक, लक्ष्मीवान् और सूर्य के समान तेजस्वी था ॥२॥ महालक्ष्मी का मनोहर कवच जिसके गले में बंधा रहता है, वह परम ऐश्वर्य से सम्पन्न और तीनों लोकों का विजेता होता है ॥३॥ उसे देख कर धीमान् राम के भातृगण विविध शस्त्रों को हाथ में लिए उससे समर करने के लिए आये ॥४॥ राजकुमार ने अपने बाण-जाल से उन्हें ढक दिया और उन वीरों ने भी लीला की भाँति उस बाण-जाल को काट कर गिरा दिया ॥५॥ पुनः उन वीरों ने पाँच बाण से राजा का रथ, पाँच बाण से सारथी, दश बाण से रथ के घोड़े, सात बाण से धनुष, पाँच बाण से तरकस और शंकर के शूल द्वारा उसके भ्रातृ-वर्गों को काट डाला ॥६-७॥ उनकी तीन अक्षौहिणी सेना

ते च त्र्यक्षौहिणीं सेनां निजघ्नुश्चापि लीलया। हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीराः शिवशूलं निचिक्षिपुः॥
गले बभूव तच्छूलं राज्ञः पुष्करमालिका ॥८॥
शक्तिं च परिघं चैव भुशुण्डीं मुद्गरं तथा। गदां च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नयः॥९॥
तानि शस्त्राणि चूर्णानि क्षमाभृतो देहयोगतः। विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महामुने॥१०॥
रथं धनुश्च शस्त्राणि चास्त्राणि विविधानि च। सेनां प्रस्थापयामास कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्॥११॥
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः। चकार शरजालं च महाघोरतरं मुने॥१२॥
चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराः शस्त्रपाणयः। राजा प्रस्वापनेनैव निद्रितांस्तांश्चकार ह॥१३॥
भ्रातॄंश्च निद्रितान्दृष्ट्वा जामदग्न्यो महाबलः। क्षतविक्षतसर्वाङ्गान्बोधयामास तत्त्वतः॥१४॥
बोधयित्वा तान्निवार्य जगाम रणमूर्धनि। चिक्षेप परशुं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसया॥१५॥
छित्त्वा राज्ञः किरीटं च पर्शुर्भूमौ पपात ह। जग्राह परशुं शीघ्रं जामदग्न्यो महाबलः॥१६॥
तदा शंकरशूलं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगाम शिवसंनिधिम्॥१७॥
राजा निहन्तुं तं रामं शरजालं चकार ह। चिच्छेद शरजालं च रैणुकेयश्च लीलया॥१८॥
क्रमेण राजा नानास्त्रं चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। तच्चिच्छेद क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतां वरः॥१९॥
भृगुश्चिक्षेप नानास्त्रं महासंधानपूर्वकम्। तच्चिच्छेद महाराजः संधानेनैव लीलया॥२०॥

को लीला पूर्वक काट कर उन्होंने राजा को मारने के लिए शिव-शूल का प्रयोग किया, किन्तु वह शूल राजा के गले में जाकर कमल की माला बन गया॥८॥ अनन्तर प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों ने शक्ति, परिध, भुशुण्डी, मुद्गर और गदा का प्रयोग किया॥९॥ हे महामुने! राजा के शरीर में पहुँचते ही उपर्युक्त सभी शस्त्र चूर्ण-चूर्ण होकर गिर गये। इसे देख कर भृगु के सभी भ्राताओं को महान् आश्चर्य हुआ॥१०॥ उपरांत कार्त्तवीर्य्यार्जुन ने स्वयं रथ, धनुष, अनेक शस्त्रास्त्रों और सेना को राजा के पास भेजा॥११॥ हे मुने! महाबली राजा पुष्कराक्ष ने उस रथ पर बैठ कर महाघोरतर बाण-वर्षा करना आरम्भ किया॥१२॥ शस्त्र हाथों में लिए उन वीरों ने भी उनका शरजाल काट दिया। राजा ने प्रस्वापन द्वारा उन्हें निद्रित कर दिया॥१३॥ उपरांत महाबली जामदग्न्य (राम) ने भ्राताओं को, जिनके अंग क्षत विक्षत (छिन्न-भिन्न) हो गए थे, निद्रित देख कर भलीभाँति उद्बुद्ध कर के रणस्थल से उन्हें हटा दिया और स्वयं क्रुद्ध होकर राजा को मारने के लिए फरसे का शीघ्र प्रयोग किया। फरसा राजा का किरीट काट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। महाबली राम ने उसे शीघ्र पकड़ लिया॥१४-१६॥ अनन्तर उन्होंने मंत्रपूर्वक शिव-शूल का प्रयोग किया, वह राजा का कुण्डल काट कर शिव के पास चला गया॥१७॥ राजा ने पुनः राम के हननार्थ बाणों का जाल-सा बिछा दिया, किन्तु भृगु ने उसे लीला पूर्वक काट दिया॥१८॥ राजा ने क्रमशः मन्त्रपूर्वक अनेक भाँति के अस्त्रों का प्रयोग किया, जिन्हें शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने क्रमशः काट कर गिरा दिया॥१९॥ भृगु ने भी अनेक भाँति के अस्त्रों का महासन्धानपूर्वक प्रयोग किया, जिसे महाराजा ने हस्तलाघव द्वारा काट कर गिरा दिया॥२०॥ राम ने मंत्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र का संधान करके प्रयोग किया, राजा ने

रामश्चिक्षेप संधाय ब्रह्मास्त्रं मन्त्रपूर्वकम्। राजा निर्वापणं चक्रे संधानेनैव लीलया ॥२१॥
सर्वाण्यस्त्राणि शस्त्राणि रामः पाशुपतं विना। चिक्षेप कोपविभ्रान्तो भूपश्चिच्छेद तानि च ॥२२॥
रामः स्नात्वा[1] शिवं नत्वाऽऽददे पाशुपतं मुने। नारायणश्च भगवानवोचद्विप्ररूपधृक् ॥२३॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

किं करोषि भृगो वत्स त्वमेव ज्ञानिनां वरः। नरं हन्तुं पाशुपतं कोपार्तिक्षिपसि भ्रमात् ॥२४॥
विश्वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सेश्वरम्। सर्वघ्नं स्याच्छस्त्रमिदं विना श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥२५॥
अहो पाशुपतं जेतुं नालमेव सुदर्शनम्। हरेः सुदर्शनं चैव सर्वास्त्रपरिमर्दकम् ॥२६॥
खट्वाङ्गिनः पाशुपतं हरेरेव सुदर्शनम्। एते प्रधाने सर्वेषामस्त्राणां च जगत्त्रये ॥२७॥
त्यज पाशुपतं ब्रह्मन्मदीयं वचनं शृणु। यथा जेष्यसि राजानं पुष्कराक्षं महाबलम् ॥२८॥
कार्तवीर्यमजेतारं यथा जेष्यसि सांप्रतम्। श्रूयतां सावधानेन तत्सर्वं कथयामि ते ॥२९॥
महालक्ष्म्याश्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। भक्त्या च पुष्कराक्षेण धृतं कण्ठे विधानतः ॥३०॥
परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं परमाद्भुतम्। धृतं च दक्षिणे बाहौ पुष्कराक्षसुतेन च ॥३१॥
कवचस्य प्रभावेण विश्वं जेतुं क्षमौ च तौ। को जेता च त्रिभुवने देहे च कवचे स्थिते ॥३२॥

संधान से ही उसे लीला पूर्वक समाप्त कर दिया ॥२१॥ अनन्तर राम ने कुपित होकर पाशुपत को छोड़ कर सभी अस्त्रों का प्रयोग किया, राजा ने उसे काट कर गिरा दिया ॥२२॥ हे मुने! राम ने शिव को नमस्कार कर के पाशुपत अस्त्र ग्रहण किया, उसी समय नारायण ने ब्राह्मण रूप धारण कर उनसे कहा ॥२३॥

ब्राह्मण बोले—हे वत्स, भृगो! तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर यह क्या कर रहे हो, एक मनुष्य के वध के लिए भ्रम से कोपवश पाशुपत का प्रयोग कर रहे हो?॥२४॥ ऐसा करने से पाशुपत द्वारा शंकर समेत सारा विश्व भस्म हो जायगा, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्य सब का विनाश इसके द्वारा हो सकता है ॥२५॥ इतना ही नहीं, पाशुपत को जीतने के लिए भगवान् का सुदर्शन चक्र भी समर्थ नहीं है, वह सभी अस्त्रों एवं शत्रुओं का मर्दन करता है ॥२६॥ इस प्रकार तीनों लोकों में शिव का पाशुपत और भगवान् का सुदर्शन चक्र, ये दोनों समस्त अस्त्रों में प्रधान हैं ॥२७॥ अतः हे ब्रह्मन्! पाशुपत रख कर मेरी बातें सुनो! महाबली पुष्कराक्ष को जिस प्रकार जीतोगे मैं बता रहा हूँ ॥२८॥ अजेता कार्त्तवीर्य्य को जिस प्रकार जीतोगे, मैं सभी कुछ बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥२९॥ राजा पुष्कराक्ष ने तीनों लोकों में दुर्लभ महालक्ष्मी का कवच भक्तिपूर्वक सविधान अपने कण्ठ में बाँधा है ॥३०॥ तथा पुष्कराक्ष के पुत्र ने दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का परमोत्तम कवच अपने दाहिने बाहु में बाँध रखा है ॥३१॥ कवच के प्रभाव से ये दोनों समस्त विश्व को जीतने में समर्थ हैं, अतः देह में कवच के रहते इन्हें तीनों लोक में कौन जीत सकता है? ॥३२॥

---

१. ख. स्तुत्वा।

अहं यास्यामि भिक्षार्थं संनिधाने तयोर्मुने। करिष्यामि च तद्भिक्षां प्रतिज्ञासफलाय ते ॥३३॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः संत्रस्तमानसः। उवाच ब्राह्मणं वृद्धं हृदयेन विदूयता ॥३४॥

परशुराम उवाच

न जानामि महाप्राज्ञ कस्त्वं ब्राह्मणरूपधृक्। शीघ्रं च ब्रूहि मां मूढं तदा गच्छ नृपान्तिकम् ॥३५॥
जामदग्न्यवचः श्रुत्वा प्रहस्य ब्राह्मणः स्वयम्। उक्त्वा चाहं विष्णुरिति ययौ भिक्षितुमीश्वरः ॥३६॥
गत्वा तयोः संनिधानं ययाचे कवचे च तौ। ददतुस्तौ च कवचे विष्णवे विष्णुमायया ॥
गृहीत्वा कवचे विष्णुर्वैकुण्ठं निर्जगाम सः ॥३७॥

नारद उवाच

महालक्ष्म्याश्च कवचं केन दत्तं महामुने। पुष्कराक्षाय भूपाय श्रोतुं कौतुहलं मम ॥३८॥
कवचं चापि दुर्गायाः पुष्कराक्षसुताय च। दुर्लभं केन वादत्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥३९॥
कवचं चापि किंभूतं तयोर्वा तस्य किं फलम्। मन्त्रौ तु किंप्रकारौ च तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥४०॥

नारायण उवाच

दत्तं सनत्कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते। महालक्ष्म्याश्च कवचं मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ॥४१॥
स्तवनं चापि गोप्यं वै प्रोक्तं तच्चरितं च यत्। ध्यानं च सामवेदोक्तं पूजां चैव मनोहराम् ॥४२॥

हे मुने! मैं उन दोनों के पास उसी के भिक्षार्थ जा रहा हूँ, जिससे तुम्हारी प्रतिज्ञा सफल हो जाये ॥३३॥ ब्राह्मण की ऐसी बातें सुन कर राम का चित्त संत्रस्त हो गया, हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण से कहा ॥३४॥

परशुराम बोले—हे महाप्राज्ञ! यह मैं नहीं जानता कि वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किए आप कौन हैं, पहले आप मुझ मूढ को बताने की कृपा करें और पश्चात् राजा के समीप जायें ॥३५॥ जामदग्न्य की बात सुनकर ब्राह्मण ने स्वयं हँस कर कहा—'मैं विष्णु हूँ।' पश्चात् ईश्वर भिक्षा के लिए चले गये ॥३६॥ उन दोनों के पास जाकर उन्होंने उनसे कवच की याचना की। उन दोनों ने भी विष्णु-माया से प्रेरित होकर विष्णु को अपना-अपना कवच दे दिया और विष्णु ने उन्हें लेकर वैकुण्ठ चले गये ॥३७॥

नारद बोले—हे महामुने! राजा पुष्कराक्ष को महालक्ष्मी का कवच किसने प्रदान किया था, यह सुनने का मुझे कौतूहल हो रहा है ॥३८॥ और पुष्कराक्ष के पुत्र को दुर्गा का दुर्लभ कवच किसने दिया है, यह भी आप बताने की कृपा करें ॥३९॥ हे जगद्गुरो! उन दोनों के कवच, उसके फल और मन्त्र मुझे बतायें ॥४०॥

नारायण बोले—सनत्कुमार ने विद्वान् पुष्कराक्ष को महालक्ष्मी का कवच, दशाक्षर मन्त्र, गोप्य स्तव, उनका चरित, सामवेदोक्त ध्यान और मनोहर पूजा बतायी ॥४१-४२॥ पूर्वकाल में दुर्गा का कवच दुर्वासा ने दिया था तथा

दुर्गायाश्चापि कवचं दत्तं दुर्वाससा पुरा। स्तवनं चातिगोप्यं च मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ॥४३॥
पश्चाच्छ्रोष्यसि तत्सर्वं देव्याश्च परमाद्भुतम्। महायुद्धसमारम्भे दत्तं प्रार्थनया च यत् ॥४४॥
महालक्ष्म्याश्च मन्त्रं च शृणु तं कथयामि ते। ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाद्भुतम् ॥४५॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने। दत्तं तस्मै कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते ॥४६॥
सहस्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम्। पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम् ॥४७॥
पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पाधिशायिनीम्। पद्मिनीं पद्महस्तां च पद्ममालाविभूषिताम् ॥४८॥
पद्मभूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाविवर्धिनीम्। पद्माटवीं प्रपश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा ॥४९॥
चन्दनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत्। गणं संपूज्य दत्त्वा चैवोपचारांश्च षोडश ॥५०॥
ततः स्तुत्वा च प्रणमेत्साधको भक्तिपूर्वकम्। कवचं श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वसारं वदामि ते ॥५१॥

नारायण उवाच

शृणु विप्रेन्द्र पद्मायाः कवचं परमं शुभम्। पद्मनाभेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपद्मके ॥५२॥
संप्राप्य कवचं ब्रह्मा तत्पद्मे ससृजे जगत्। पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः ॥५३॥
पद्मालयावरं प्राप्य पाद्मश्च जगतां प्रभुः। पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचं परमाद्भुतम् ॥५४॥
दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते। कुमारेण च यद्दत्तं पुष्कराक्षाय नारद ॥५५॥

गोप्य स्तवसमेत दशाक्षर मन्त्र भी बताया था ॥४३॥ देवी का परम अद्भुत कवच आदि सब कुछ पश्चात् बताऊँगा, जो महायुद्ध के आरम्भ के समय प्रार्थना करने पर उन्होंने दिया था ॥४४॥ इस समय महालक्ष्मी का मंत्र तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। 'ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' यह परमोत्तम मंत्र है ॥४५॥ हे मुने ! सामवेदोक्त ध्यान और पूजा-विधान, जो कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया था, बता रहा हूँ, सुनो ॥४६॥ सहस्र दल वाले कमल पर स्थित, पद्मनाभ (विष्णु) की प्रेयसी, सती, कमलालया, कमलमुखी, कमलपत्र के समान नेत्र वाली, कमलपुष्पप्रिया, कमल पुष्प की शय्या पर शयन करने वाली, पद्मिनी, कमल हाथ में लिए, कमल की माला से सुशोभित, कमल के भूषणों से विभूषित, कमल की शोभा बढ़ाने वाली, कमल-वन को देखती हुई और मन्द-मन्द मुसुकाती उस लक्ष्मी की मैं सहर्ष सेवा कर रहा हूँ ॥४७-४९॥ चन्दन द्वारा अष्टदल कमल पर लिख कर कमलपुष्प से पूजन करे। गण की पूजा, सोलहों उपचार का समर्पण और स्तुति करके साधक को चाहिए कि भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। हे ब्रह्मन् ! अब तुम्हें समस्त का सार-भाग वह कवच बता रहा हूँ, सुनो ॥५०-५१॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र ! पद्मा (लक्ष्मी) का वह परम शुभ कवच, जिसे भगवान् पद्मनाभ ने अपने नाभिकमल में स्थित ब्रह्मा को प्रदान किया था, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। ब्रह्मा ने कवच प्राप्त कर उसी कमल पर सारे संसार की रचना आरम्भ की और कमलालया (लक्ष्मी) के प्रसाद से लक्ष्मीसम्पन्न भी हो गए ॥५२-५३॥ जगत् के स्वामी ब्रह्मा ने लक्ष्मी से वर प्राप्त करके पद्मकल्प में वह परम अद्भुत कवच अपने धीमान् प्रिय पुत्र सनत्कुमार को प्रदान किया था। हे नारद ! वही कवच सनत्कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया है ॥५४-५५॥ जिसे धारण करने और पाठ करने से ब्रह्मा समस्त सिद्धों के महान् अधीश्वर,

यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान्। परमैश्वर्यसंयुक्तः सर्वसंपत्समन्वितः ॥५६॥
यद्धृत्वा च धनाध्यक्षः कुबेरश्च धनाधिपः। स्वायंभुवो मनुः श्रीमान्पठनाद्धारणाद्यतः ॥५७॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने। पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो ह्यभवद्धारणाद्यतः ॥५८॥
कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्षः प्रजापतिः। धर्मश्च कर्मणां साक्षी पाता यस्य प्रसादतः ॥५९॥
यद्धृत्वा दक्षिणे बाहौ विष्णुः क्षीरोदशायितः। भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शेषो नारायणांशकः ॥६०॥
यद्धृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः। सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणाद्यतः ॥६१॥
राजा मरुत्तो भगवानभवद्धारणाद्यतः। त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्नहुषो यस्य धारणात् ॥६२॥
विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्गः पठनाद्धारणाद्यतः। मुचुकुन्दो यतः श्रीमान्मान्धातृतनयो महान् ॥६३॥
सर्वसंपत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम् ॥६४॥
धर्मार्थिकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥६५॥
[1]ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः ॥६६॥
[2]ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु। [3]ॐ श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ॥६७॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु। ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदाऽवतु ॥६८॥

परम ऐश्वर्य सम्पन्न तथा समस्त सम्पत्ति से युक्त हुए ॥५६॥ जिसे धारण कर कुबेर धनाध्यक्ष और धन के अधीश्वर हुए तथा धारण एवं पाठ करने से स्वायम्भुव मनु हुए ॥५७॥ हे मुने! उसके धारण करने से प्रियव्रत और उत्तानपाद लक्ष्मीवान् तथा राजा पृथु तत्क्षण पृथ्वीपति हुए ॥५८॥ कवच के प्रसाद से दक्ष स्वयं प्रजापति हुए। उसके प्रसाद से धर्म कर्मों के साक्षी हुए, दाहिने बाहु में धारण करने से विष्णु क्षीरसागरशायी हुए और उसे नारायण के अंश से उत्पन्न शेष भक्तिपूर्वक कण्ठ में धारण किये हुए हैं ॥५९-६०॥ उसे धारण कर कश्यप प्रजापति ने वामन को प्राप्त किया और महेन्द्र समस्त देवों के अधिप हुए ॥६१॥ उसे धारण कर राजा मरुत्त भगवान् हो गए, श्रीमान् राजा नहुष तीनों लोकों के अधीश्वर हुए ॥६२॥ पढ़ने और धारण करने से राजा खट्वांग ने विश्व विजय किया और मान्धाता के पुत्र राजा मुचुकुन्द श्रीपति हुए ॥६३॥ समस्त-सम्पत्ति-प्रदायक इस कवच के प्रजापति ऋषि, बृहती छन्द, स्वयं पद्मालया देवी, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है, यह कवच परम अद्भुत और महान् होने का एकमात्र पुण्य बीज है ॥६४-६५॥ 'ओं ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'श्रीं' मेरे कपाल की रक्षा करे 'श्रीं श्रियै नमः' दोनों नेत्रों की रक्षा करे ॥६६॥ 'ओं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे कानों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे ॥६७॥ 'ओं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं कृष्णप्रियायै' सदा दाँतों के छिद्रों की रक्षा करे ॥६८॥

१क. ओं क्लीं ह्रीं श्रीं क०। २क. ओं ह्रीं श्रीं। ३क. ह्रीं श्रीं म०।

ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदाऽवतु। ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदाऽवतु ॥६९॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदाऽवतु ॥७०॥
ॐ श्रीं मों कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा च मम हस्तौ सदाऽवतु ॥७१॥
ॐ श्रीनिवासकान्तायै मम पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥७२॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया। पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया ॥७३॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु सा स्वयम्। उत्तरे कमला पातु चैशान्यां सिन्धुकन्यका ॥७४॥
नारायणी च पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु। संततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम ॥७५॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥७६॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत्फलं लभते धर्मी कवचेन[1] ततोऽधिकम् ॥७७॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान्प्रतिजन्मनि ॥७८॥
अस्ति लक्ष्मीगृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्। देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥७९॥
स सर्वपुण्यवान्धीमान्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥८०॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि। गुरुभक्ताय शिष्याय शरण्याय[2] प्रकाशयेत् ॥८१॥

'ओं श्रीं नारायणेशायै' मेरे कण्ठ की सदा रक्षा करे। 'ओं श्रीं केशवकान्तायै' सदा मेरे कन्धों की रक्षा करे ॥६९॥ 'ओं श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा' सदा नाभि की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं संसारमात्रे' सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे ॥७०॥ 'ओं श्रीं मों कृष्णकान्तायैस्वाहा' सदा पृष्ठ की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' मेरे हाथों की सदा रक्षा करे ॥७१॥ 'ओं श्रीनिवासकान्तायै' सदा मेरे चरणों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥७२॥ पूर्व दिशा में महालक्ष्मी, अग्निकोण में कमलालया, दक्षिण में पद्मा, नैर्ऋत्य में श्रीहरिप्रिया, पश्चिम में पद्मालया, वायव्य में वह स्वयं, उत्तर में कमला और ईशान में सिन्धुकन्यका मेरी रक्षा करें ॥७३-७४॥ ऊपर की ओर नारायणी रक्षा करें, नीचे विष्णुप्रिया और मेरे चारों ओर विष्णुप्राणाधिका निरन्तर रक्षा करें ॥७५॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वैश्वर्यप्रद नामक कवच, जो समस्त मन्त्र-समुदाय का स्वरूप तथा परम अद्भुत है, बता दिया ॥७६॥ मेरु के समान सुवर्ण का पर्वत ब्राह्मणों को दान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल धर्मी को इस कवच द्वारा प्राप्त होता है ॥७७॥ सविधि गुरु की पूजा करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह प्रतिजन्म में श्रीमान् होता है ॥७८॥ लक्ष्मी उसके घर सौ पीढ़ी तक निश्चल निवास करती हैं और वह देवेन्द्रों एवं असुरराजों से निश्चित अवध्य रहता है ॥७९॥ जिसके गले में यह कवच वर्तमान रहता है, वह समस्तपुण्यवान्, विद्वान्, समस्त यज्ञों में दीक्षित और समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका हुआ होता है ॥८०॥ अतः लोभ, मोह एवं भय वश भी इसे जिस किसी को न प्रदान करे, गुरुभक्त शिष्य को, जो शरण योग्य हो, बताये

---

१. चे च हृदि स्थिते। २क. सरलाय।

इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्। कोटिसंख्यं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० श्रीलक्ष्मीकवचवर्णनं
नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

कवचं कथितं ब्रह्मन्पद्मायाश्च मनोहरम् । परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभौ ॥१॥
पद्माक्षप्राणतुल्यं च जीवनं बलकारणम् । कवचानां च यत्सारं दुर्गासेवनकारणम् ॥२॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम् । श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥३॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शंकराय ददौ पुरा। जघान त्रिपुरं रुद्रो यद्धृत्वा भक्तिपूर्वकम् ॥४॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः। यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी ॥५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ज्ञानवाञ्छक्तिमान्भुवि। शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनां च गुरुर्यतः ॥
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥६॥

॥८१॥ इस कवच को विना जाने जो जगज्जननी लक्ष्मी की आराधना करता है, उसके लिए करोड़ों की संख्या में जप किया जाने पर भी मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में श्रीलक्ष्मी-कवच-वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३९

नारद बोले—हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! पद्मा का मनोहर कवच आपने सुना दिया, अब परम दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का कवच कहने की कृपा करें ॥१॥ जो राजा पद्माक्ष के प्राण के समान, जीवन और बल का कारण, समस्त कवचों का सारभाग और दुर्गा की आराधना का एकमात्र कारण है ॥२॥

नारायण बोले—हे नारद ! दुर्गा का शुभ कवच मैं तुम्हें बताऊँगा जिसे गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने पूर्व समय ब्रह्मा को प्रदान किया था ॥३॥ त्रिपुरासुर के संग्राम में ब्रह्मा ने शंकर को कवच दिया और जिसे भक्तिपूर्वक धारण कर रुद्र ने त्रिपुर का वध किया ॥४॥ उपरान्त शिव ने गौतम को एवं गौतम ने पद्माक्ष को दिया। जिससे पद्माक्ष विजयी एवं सातों द्वीपों के अधीश्वर हुए हैं ॥५॥ जिसे धारण और पाठ करने से ब्रह्मा भूतल पर (सबसे अधिक) ज्ञानवान् और शक्तिमान् हुए, शिव सर्वज्ञाता एवं योगियों के गुरु हुए तथा मुनिश्रेष्ठ गौतम शिव

ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी ॥७॥
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः। [1]पुण्यतीर्थं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥८॥
ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। ओं ह्रीं मे पातु कपालं चाप्यों[2] ह्रीं श्रीं पातु लोचने ॥९॥
पातु मे कर्णयुग्मं चाप्यों दुर्गायै नमः सदा। ओं ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः ॥१०॥
ह्रीं[3] श्रीं ह्रूमिति दन्तांश्च पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम्। क्लीं[4] क्लीं क्लीं पातु कण्ठं च दुर्गे रक्षतु गण्डके ॥११॥
स्कन्धं[5] महाकालि दुर्गे स्वाहा पातु निरन्तरम्। वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः ॥१२॥
दुर्गे दुर्गे रक्ष पार्श्वौ[6] स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। दुर्गे दुर्गे देहि रक्षां पृष्ठं मे पातु सर्वतः ॥१३॥
ओं[7] ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदाऽवतु। ऊँ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥१४॥
प्राच्यां पातु महामाया चाऽऽग्नेय्यां पातु कालिका। दक्षिणे दक्षकन्यां च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी ॥१५॥
पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा। कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सदा ॥१६॥
ऊर्ध्वं नारायणी पातु त्वम्बिकाऽधः सदाऽवतु। ज्ञानं ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदाऽवतु ॥१७॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१८॥

के तुल्य हुए ॥६॥ ब्रह्माण्डविजय नामक इस कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी और ब्रह्माण्ड के विजयार्थ इसका विनियोग कहा गया है। यह कवच परम अद्भुत एवं महान् लोगों का पुण्यतीर्थ है ॥७-८॥ 'ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं' मेरे कपाल की करे और 'ओं ह्रीं श्रीं' दोनों नेत्रों की रक्षा करे ॥९॥' ओं दुर्गायै नमः' सदा मेरे कानों की और 'ओं ह्रीं श्रीं' सदा चारों ओर से मेरी नासिका की रक्षा करे॥१०॥ 'ह्रीं श्रीं ह्रूं' दाँतों की, 'क्लीं' दोनों ओंठों की तथा 'क्लीं क्लीं क्लीं' कण्ठ की और 'दुर्गे' कपोलों की रक्षा करे ॥११॥ 'महाकालि दुर्गे स्वाहा' निरन्तर कन्धे की और 'विपद्विनाशिन्यै स्वाहा' वक्षःस्थल की चारों ओर से रक्षा करे ॥१२॥ 'दुर्गे दुर्गे रक्ष' दोनों पार्श्वों की और 'दुर्गे स्वाहा' सदा नाभि की रक्षा करे। 'दुर्गे दुर्गे देहि रक्षां' सब ओर से पीठ की रक्षा करे ॥१३॥ 'ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा हाथ और चरण की और 'ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥१४॥ पूर्व की ओर महामाया, अग्निकोण में कालिका, दक्षिण में दक्षकन्या, नैर्ऋत्य में शिवसुन्दरी, पश्चिम में पार्वती, वायव्य में वाराही, उत्तर में कुबेरमाता और ईशान में ईश्वरी सदा रक्षा करें ॥१५-१६॥ ऊपर की ओर नारायणी, नीचे की ओर अम्बिका, ज्ञान की ज्ञानप्रदा तथा स्वप्न में निद्रा देवी सदा रक्षा करें ॥१७॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने परम अद्भुत और समस्त मन्त्रसमूहस्वरूप ब्रह्माण्डविजय नामक कवच तुम्हें बता दिया ॥१८॥ सभी तीर्थों में सविधि स्नान से, समस्त यज्ञों के अनुष्ठान से और समस्त

१क. ०ण्यजीवश्च०। २. चाप्यैं ह्रीं। ३क. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं इति ना०। ४क. श्रीं ह्रीं क्लीमिति दन्तालि पातु ह्री मो०। ५क. क्लीं ह्रीं ह्रीं पा०। ६क. ०न्धं दुर्गविनाशिन्यै स्वा०। ७क. ओं श्रीं ह्रीं।

सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नरः ॥१९॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु यः ॥२०॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः । ॥२१॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गतिनाशिनीम् । शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥२२॥
कवचं कण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सिद्धिदम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सदुर्लभम् ॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० दुर्गतिनाशिनीकवचं
नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

तं गृहीत्वा तदा विष्णौ वैकुण्ठं च गते सति । सपुत्रं च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः ॥१॥
कृत्वा युद्धं तु सप्ताहं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः । राजा कवचहीनोऽपि सपुत्रश्च पपात ह ॥२॥
पतिते तु सहस्राक्षे कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् । आजगाम महावीरो द्विलक्षाक्षौहिणीयुतः ॥३॥
सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम् । नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्धनि ॥४॥

व्रतों एवं उपवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल मनुष्य को इसके द्वारा प्राप्त होता है ॥१९॥ जो अनेक भाँति के वस्त्र, अलंकार और चन्दन द्वारा सविधि गुरु की अर्चा करके इसे कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह तीनों लोकों का विजयी एवं समस्त शत्रुओं का मर्दक होता है। अतः इस कवच को बिना जाने जो दुर्गतिनाशिनी की सेवा करता है, उसका सौ लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धप्रद नहीं होता है ॥२०-२२॥ हे नारद ! सिद्धिप्रद तथा काण्वशाखोक्त यह कवच, जो गोपनीय और अति दुर्लभ है, जिस किसी को नहीं देना चाहिए ॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण के संवाद में दुर्गतिनाशिनी-
कवच-वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

नारायण बोले—तब उसे लेकर विष्णु के वैकुण्ठ चले जाने पर भृगुनन्दन राम ने पुत्र समेत सहस्राक्ष का वध किया ॥१॥ कवचहीन होने पर भी राजा ब्रह्मास्त्र द्वारा सात दिन तक युद्ध कर सपुत्र समाप्त हो गया ॥२॥ सहस्राक्ष के मर जाने पर महावीर कार्त्तवीर्य्यार्जुन स्वयं दो लाख अक्षौहिणी सेना समेत युद्ध के लिए आ गया ॥३॥ वह सुवर्ण के रथ पर चढ़ कर, रत्नों के सारभाग से निर्मित पोशाक पहने हुए और अपने चारों ओर विविध अस्त्रों को

समरे तं परशुरामो राजेन्द्रं च ददर्श ह । रत्नालंकारभूषाढ्यै राजेन्द्राणां च कोटिभिः ॥५॥
रत्नातपत्रभूषाढ्यं रत्नालंकारभूषितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम् ॥६॥
राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमवरुह्य रथादहो । प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सह ॥७॥
ददौ शुभाशिषं तस्मै रामश्च समयोचिताम् । प्रोवाच च गतार्थं तं स्वर्गं गच्छेति सानुगः ॥८॥
उभयोः सेनयोर्युद्धमभवत्तत्र नारद । पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः ॥
क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्तवीर्यप्रपीडिताः ॥९॥
नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः । न ददर्श स्वसैन्यं च राजसैन्यं तथैव च ॥१०॥
चिक्षेप रामश्चाऽऽग्नेयं बभूवाग्निमयं रणे । निर्वापयामास राजा वारुणेनैव लीलया ॥११॥
चिक्षेप रामो गान्धर्वं शैलसर्पसमन्वितम् । वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥१२॥
चिक्षेप रामो नागास्त्रं दुर्निवार्यं भयंकरम् । गारुडेन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥१३॥
माहेश्वरं च भगवांश्चिक्षेप भृगुनन्दनः । निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया ॥१४॥
ब्रह्मास्त्रं चिक्षिपे रामो नृपनाशाय नारद । ब्रह्मास्त्रेण च शान्तं तत्प्राणनिर्वापणं रणे ॥१५॥
दत्तदत्तं च यच्छूलमव्यर्थं मन्त्रपूर्वकम् । जग्राह राजा परशुरामनाशाय संयुगे ॥१६॥
शूलं ददर्श रामश्च शतसूर्यसमप्रभम् । प्रलयाग्निशिखोद्रिक्तं दुर्निवार्यं सुरैरपि ॥१७॥

सुरक्षित किये हुए रणभूमि में स्थित था ॥४॥ अनन्तर समरांगण में परशुराम ने उस राजेन्द्र को देखा, जो रत्नों के अलंकारों से विभूषित करोड़ों राजेन्द्रों से युक्त, रत्नों के छत्र से समन्वित, रत्नों के आभूषणों से भूषित, सर्वांग में चन्दन लगाये, मुस्कराता हुआ और अत्यन्त मनोहर था ॥५-६॥ उस समय राजा भी मुनीन्द्र राम को देखकर रथ से उतर पड़ा और उन्हें प्रणाम कर पुनः राजाओं समेत रथ पर बैठ गया ॥७॥ राम ने शुभाशिष देकर उससे समयोचित बात कही कि 'अनुचरों समेत अब स्वर्ग को प्रस्थान करो' ॥८॥ हे नारद ! अनन्तर दोनों सैनिकों में युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें राम के शिष्यगण और महाबली भ्रातृगण कार्तवीर्य्य से अतिपीड़ित एवं छिन्न-भिन्न सर्वांग होने पर रण से भाग निकले ॥९॥ राजा के बाण-जाल से आच्छन्न होने के कारण राम अपनी सेना और राजा की सेनाओं को नहीं देख सके ॥१०॥ पश्चात् राम ने समर में आग्नेय बाण का प्रयोग किया जिससे सब कुछ अग्निमय हो गया। राजा ने वारुण बाण द्वारा उसे लीला पूर्वक भाँति शान्त कर दिया ॥११॥ राम ने पर्वत-सर्प-युक्त गान्धर्व अस्त्र का प्रयोग किया, जिसे महाराज ने वायव्य बाण द्वारा समाप्त कर दिया ॥१२॥ राम ने अनिवार्य एवं भयंकर नागास्त्र का प्रयोग किया, जिसे महाराज ने गारुड़ अस्त्र द्वारा बिना यत्न के नष्ट कर दिया ॥१३॥ भृगुनन्दन भगवान् राम ने माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया, जिसे राजा ने वैष्णव अस्त्र द्वारा लीला पूर्वक समाप्त कर दिया ॥१४॥ हे नारद ! अनन्तर राम ने राजा के बिनाशार्थ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, राजा ने भी ब्रह्मास्त्र द्वारा उस प्राणनाशक को युद्ध में शान्त कर दिया ॥१५॥ राजा ने उस रण में परशुराम के वधार्थ दत्तात्रेय-प्रदत्त शूल का मंत्र-पूर्वक उपयोग किया, जो कभी भी व्यर्थ न होने वाला था ॥१६॥ राम ने सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति-पूर्ण, प्रलयकालीन अग्निशिखा से बढ़ा-चढ़ा और देवों के लिए भी दुर्निवार उस शूल को देखा ॥१७॥ हे नारद !

पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद। मूर्च्छापवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन्॥१८॥
पतिते तु तदा रामे सर्वे देवा भयाकुलाः। आजग्मुः समरं तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥१९॥
शंकरश्च महाज्ञानी महाज्ञानेन लीलया। ब्राह्मणं जीवयामास तूर्णं नारायणाज्ञया॥२०॥
भृगुश्च चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान्। प्रणनाम परं भक्त्या लज्जानम्रात्मकंधरः॥२१॥
राजा दृष्ट्वा सुरेशांश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणम्य शिरसा मूर्ध्ना तुष्टाव च सुरेश्वरान्॥२२॥
तत्राऽऽजगाम भगवान्दत्तात्रेयो रणस्थलम्। शिष्यरक्षानिमित्तेन कृपालुर्भक्तवत्सलः॥२३॥
भृगुः पाशुपतास्त्रं च सोऽग्रहीत्कोपसंयुतः। दत्तदत्तेन दृष्टेन बभूव स्तम्भितो भृगुः॥२४॥
ददर्श स्तम्भितो रामो राजानं रणमूर्धनि। नानापार्षदयुक्तेन कृष्णेनाऽऽरक्षितं रणे॥२५॥
सुदर्शनं प्रज्ज्वलन्तं भ्रमणं कुर्वता सदा। सस्मितेन स्तुतेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः॥२६॥
गोपालशतयुक्तेन गोपवेषविधारिणा। नवीजलदाभेन वंशीहस्तेन गायता॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमात्मनः॥२८॥
राज्ञोऽस्ति दक्षिणे बाहौ सद्रत्नगुटिकान्वितम्। गृहीतकवचे शंभौ भिक्षया योगिनां गुरौ॥२९॥
तदा हन्तुं नृपं शक्तो भृगुश्चेति च नारद। श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाणीं शंकरो द्विजरूपधृक्॥३०॥

राम के ऊपर वह शूल गिरा, जिससे भगवान् का स्मरण करते हुए भृगु मूर्च्छित हो गये॥१८॥ राम के गिर जाने पर समस्त देवगण भयाकुल हो गये, उस समय युद्ध में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी आ गये॥१९॥ नारायण की आज्ञा से महाज्ञानी शिव ने अपने महाज्ञान द्वारा लीलापूर्वक शीघ्र ब्राह्मण को जीवित कर दिया॥२०॥ चेतना प्राप्त होने पर भृगु ने अपने सामने स्थित देवों को देखा और लज्जा से कन्धे को झुकाकर भक्तिपूर्वक सभी को प्रणाम किया॥२१॥ राजा ने भी वहाँ देवों को देखकर भक्ति से कन्धे झुकाये शिर से सबको प्रणाम किया और देवेश्वरों की स्तुति की॥२२॥ इसी बीच वहाँ रणभूमि में अपने शिष्य के रक्षार्थ कृपालु एवं भक्तवत्सल भगवान् दत्तात्रेय आ गये॥२३॥ अनन्तर राम ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाशुपत अस्त्र का ग्रहण किया, किन्तु उसी क्षण दत्तात्रेय के दृष्टिपात द्वारा भृगु स्तम्भित हो गये॥२४॥ स्तम्भित होने पर भी राम ने रण में राजा को देखा, जो रणभूमि में अनेक पार्षदों समेत भगवान् कृष्ण से सुरक्षित था॥२५॥ प्रज्वलित सुदर्शनचक्र घुमाकर कृष्ण सदा उसकी रक्षा कर रहे थे और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर मुसकराते हुए कृष्ण की स्तुति कर रहे थे॥२६॥ सैकड़ों लिये गोपों से युक्त, गोपवेष धारण करने वाले, नवीन मेघ के समान कान्ति वाले और हाथ में मुरली लिये हुए श्रीकृष्ण गायन कर रहे थे॥२७॥ इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई कि दत्तात्रेय द्वारा परमात्मा कृष्ण का कवच राजा को प्राप्त है, जिसे उसने उत्तम रत्न की गुटिका (तावीज) में रखकर अपने दाहिने बाहुमें धारण कर रखा है, अतः योगियों के गुरु शिव भिक्षा द्वारा उसे ग्रहण करें, तब राजा को मारने में भृगु समर्थ होंगे। हे नारद! इस आकाशवाणी को सुनकर शिव ने ब्राह्मण का वेष बनाया और राजा से वह

भिक्षां कृत्वा तु कवचमानीय च नृपस्य च। शंभुना भृगवे दत्तं कृष्णस्य कवचं च यत् ॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा जग्मुः स्वस्थानमुत्तमम्। प्रत्युवाचापि परशुरामो वै समरे नृपम् ॥३२॥

परशुराम उवाच

राजेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम्। कालभेदे जयो नृणां कालभेदे पराजयः ॥३३॥
अधीतं विधिवद्दत्तं कृत्स्ना पृथ्वी सुशासिता। सम्यक्कृतश्च संग्रामो त्वयाऽहं मूर्च्छितोऽधुना ॥३४॥
जिताः सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणो जितः। जितोऽहं दत्तशूलेन शंभुना जीवितः पुनः ॥३५॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः। मूर्ध्ना प्रणम्य तं भक्त्या यथार्थोक्तिमुवाच ह ॥३६॥

राजोवाच

किमधीतं तथा दत्तं का वा पृथ्वी सुशासिता। हताः कतिविधा भूपा मादृशा धरणीतले ॥३७॥
बुद्धिस्तेजो विक्रमश्च विविधा रणमन्त्रणा। श्रीरैश्वर्यं तथा ज्ञानं दानशक्तिश्च लौकिकम् ॥३८॥
आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा परमं तपः। सर्वं मनोरमासङ्गे गतमेव मम प्रभो ॥३९॥
सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वी पद्मांशसंभवा। यज्ञेषु पत्नी मातेव स्नेहे क्रीडति सङ्गिनी ॥४०॥

कृष्ण का कवच माँगकर भृगु को दे दिया ॥२८-३१॥ अनन्तर देवगण अपने-अपने स्थान पर चले गये और राम ने रण में पुनः राजा से कहा ॥३२॥

परशुराम बोले—हे राजेन्द्र ! उठो, साहसपूर्वक युद्ध करो। समय के भेद से मनुष्यों का जय और पराजय हुआ करता है ॥३३॥ क्योंकि मैंने विधिवत् अध्ययन कर शिष्यों को अध्ययन कराया, समस्त पृथिवी पर सुशासन किया और अच्छे ढंग से युद्ध किया, किन्तु तुम्हारे द्वारा मूर्च्छित हो गया ॥३४॥ लीला से समस्त राजाओं समेत रावण को जीता, पर दत्तके शूल से मैं भी पराजित हो गया। फिर शिव ने आकर मुझे जीवित कर दिया ॥३५॥ राम की ऐसी बातें सुनकर परम धार्मिक राजा ने भक्तिपूर्वक शिर से उन्हें प्रणाम किया और यथार्थ वचन कहना आरम्भ किया ॥३६॥

राजा बोला—आपने क्या अध्ययन किया, क्या दिया, किस पृथ्वी पर सुशासन किया और भूतल पर मेरे समान कितने राजा (आपके द्वारा) निहत हुए ? ॥३७॥ हे प्रभो ! हमारी बुद्धि, तेज, विक्रम, विविध प्रकार की युद्ध-मन्त्रणा (सलाह), श्री, ऐश्वर्य, ज्ञान, दानशक्ति, लौकिक यश, आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, परम तप आदि सब कुछ मेरा मनोरमा के साथ चला गया ॥३८-३९॥ वह मेरी पत्नी प्राण के समान, पतिव्रता और कमला के अंश से उत्पन्न थी। यज्ञों में पत्नी, स्नेह करने में माता की भाँति और क्रीड़ा के समय संगिनी (साथी) थी, शयन, भोजन और युद्ध में बाल्यकाल से साथ रहती थी, अतः उसके बिना

---

१. क. यशः कृतं च संसारे स्व०।

आबाल्यात्सङ्गिनौ शश्वच्छयने भोजने रणे। तां विना प्राणहीनोऽहं विषहीनो यथोरगः ॥४१॥
त्वया न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता। द्वितीया शोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च ॥४२॥
काले सिंहः सृगालं च सृगालः सिंहमेव च। काले व्याघ्रं हन्ति मृगो गजेन्द्रं हरिणस्तथा ॥४३॥
महिषं मक्षिका काले गरुडं च तथोरगः। किंकरः स्तौति राजेन्द्रं काले राजा च किंकरम् ॥४४॥
इन्द्रं च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति। तिरो भूत्वा सा प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे ॥४५॥
मरिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थाश्चराचराः। सर्वे काले लयं यान्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥४६॥
कालस्य कालः श्रीकृष्णः स्रष्टुः स्रष्टा यथेच्छया। संहर्ता चैव संहर्तुः पातुः पाता परात्परः ॥४७॥
महास्थूलात्स्थूलतमः सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमः कृशः। [1]परमाणुपरः कालकालः स्यात्कालभेदकः ॥४८॥
यस्य लोमानि विश्वानि स पुमांश्च महाविराट्। तेजसां षोडशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
ततः क्षुद्रविराड्जातः सर्वेषां कारणं परम्। यः स्रष्टा च स्वयं ब्रह्मा यन्नाभिकमलोद्भवः ॥५०॥
नाभेः कमलदण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः। भ्रमणाल्लक्षवर्षं च ततः स्वस्थानसंस्थितः ॥५१॥
तपश्चक्रे ततस्तत्र लक्षवर्षं च वायुभुक्। ततो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णं च सपार्षदम् ॥५२॥

मैं विषहीन साँप की भाँति प्राणहीन हो गया हूँ ॥४०-४१॥ हे विप्र! आपने मेरा युद्ध पहले कभी नहीं देखा था। मुझे पहला यही शोक है, दूसरा शोक यह है कि मैं ब्राह्मण द्वारा निहत हो रहा हूँ ॥४२॥ यद्यपि समयानुसार सिंह स्यार को मारता है, और स्यार सिंह को। समय पर मृग बाघ को मारता है और हरिण गजराज को ॥४३॥ काल में ही मक्खी महिष (भैंसे) को मारती है, और उसी प्रकार सर्प गरुड़ को। सेवक राजा की स्तुति करता है और समय आने पर राजा सेवक की प्रार्थना करता है ॥४४॥ काल आने पर मानव इन्द्र को मार देता है एवं काल के आने पर ब्रह्मा भी मर जायंगे। काल आने पर प्रकृति भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में विलीन हो जाती है ॥४५॥ सभी देवगण मर जायंगे और तीनों लोकों के चर-अचर समेत समस्त जगत् काल में विलीन हो जाता है, अतः काल ही दुर्निवार है ॥४६॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छा से काल के भी काल, स्रष्टा के स्रष्टा, संहर्ता के संहारक और रक्षक के रक्षक एवं परात्पर हैं ॥४७॥ महास्थूल से स्थूलतम, सूक्ष्म से सूक्ष्मतम, कृश (दुर्बल), परमाणु से भी परे, काल के काल और कालभेद करने वाले हैं ॥४८॥ उनके लोमों में असंख्य विश्व हैं और महाविराट् पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण के तेज का सोलहवाँ अंशरूप है ॥४९॥ उनसे शुद्ध विराट् की उत्पत्ति हुई, जो समस्त के परम कारण हैं। स्वयं ब्रह्मा, जो सृष्टि करने वाले हैं, उनके नाभिकमल से उत्पन्न हुए हैं, किन्तु प्रयास करने पर भी ब्रह्मा उस कमलदण्ड का अन्त नहीं पा सके। एक लाख वर्ष तक उसकी खोज में भ्रमण कर पुनः अपने स्थान पर स्थित हो गये ॥५०-५१॥ अनन्तर वायुभक्षण करते हुए एक लाख वर्ष तक तप करने पर उन्हें पार्षद समेत भगवान् श्रीकृष्ण और गोलोक का दर्शन प्राप्त हुआ ॥५२॥

१क. पुराणः परमः का०।

गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीधरम्। रत्नसिंहासनस्थं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥५३॥
दृष्ट्वाऽनुज्ञां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः। ईश्वरेच्छां च विज्ञाय स्रष्टुं सृष्टिं मनो दधे ॥५४॥
यः शिवः सृष्टिसंहर्ता स च स्रष्टुर्ललाटजः। विष्णुः पाता क्षुद्रविराट्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५५॥
सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः ॥५६॥
तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविराट्। सर्वप्रसूतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥५७॥
न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना। सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना ॥५८॥
सा च कृष्णे तिरो भूत्वा सृष्टिसंहारकारके। साऽऽविर्भूता सृष्टिकाले सा च नित्या[1] महेश्वरी ॥५९॥
कुलालश्च घटं कर्तुं यथाऽशक्तो मृदं विना। स्वर्णं विना स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ॥६०॥
सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया। राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती ॥६१॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः। प्राणाधिकप्रियतमा सा राधा परिकीर्तिता ॥६२॥
ऐश्वर्याधिष्ठातृदेवी सर्वमङ्गलकारिणी। परमानन्दरूपा च सा लक्ष्मीः परिकीर्तिता ॥६३॥
विद्याधिष्ठातृदेवी या परमेशस्य दुर्लभा। या माता वेदशास्त्राणां सा सावित्री प्रकीर्तिता ॥६४॥

तब ब्रह्मा ने गोप-गोपियों से घिरे, दो भुजाओं वाले, अधर पर मुरली रखे, रत्नसिंहासन पर अवस्थित और राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान कृष्ण को देखकर उन्हें बार-बार प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर ईश्वर की इच्छा जानते हुए सृष्टि सर्जन करने का मन में निश्चय किया ॥५३-५४॥ जो शिव सृष्टि का संहार करते हैं वे स्रष्टा (ब्रह्मा) के भाल से उत्पन्न हुए हैं और श्वेतद्वीपनिवासी रक्षक विष्णु क्षुद्र विराट् कहे जाते हैं ॥५५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की कला से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सभी विश्वों में सृष्टि के कारण रूप हैं ॥५६॥ समस्त देवगण भी प्राकृत (प्रकृति जन्य) हैं और महाविराट् भी प्रकृति से उत्पन्न हैं प्रकृति सबकी जननी है और भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। परमेश्वर भी बिना प्रकृति-शक्ति के सृष्टि करने में समर्थ नहीं हैं। वे मायाधीश्वर हैं बिना माया के सृष्टि सम्भव नहीं होती है ॥५७-५८॥ सृष्टि-संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण में वह प्रकृति (महाप्रलय में) तिरोहित हो जाती है और सृष्टि के अवसर पर पुनः प्रकट होती है। वह महेश्वरी प्रकृति नित्य है ॥५९॥ जिस प्रकार बिना मिट्टी के कुम्हार घड़ा बनाने में और सोनार सुवर्ण बिना कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार माया के बिना सृष्टि असम्भव है ॥६०॥ शक्ति रूप वह प्रकृति सृष्टि के समय ईश्वर की इच्छा से अपने को—राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती देवी, इनपांच रूपों में विभक्त करती है ॥६१॥ परमात्मा श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी एवं तथा उनके प्राणों से भी अधिक प्रियतमा होने के नाते उसे 'राधा' कहा जाता है ॥६२॥ ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी एवं सम्पूर्ण मंगल करने वाली उस परमानन्द रूपा को 'लक्ष्मी' कहा गया है ॥६३॥ जो परमेश्वर की दुर्लभा शक्ति विद्या की अधिष्ठात्री देवी तथा वेदशास्त्रों की जननी है, उसे 'सावित्री' कहा गया है ॥६४॥ बुद्धि की अधि-

---

१क. ०त्या यथेश्वराः।

बुद्धचधिष्ठातृदेवी या सर्वशक्तिस्वरूपिणी। सर्वज्ञानात्मिका सर्वा सा दुर्गा दुर्गनाशिनी ॥६५॥
वागधिष्ठातृदेवी या शास्त्रज्ञानप्रदा सदा। कृष्णकण्ठोद्भवा सा स्याद्या च देवी सरस्वती ॥६६॥
पञ्चधाऽऽदौ स्वयं देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। ततः सृष्टिक्रमेणैव बहुधा कलया च सा ॥६७॥
योषितः प्रकृतेरंशाः पुमांसः पुरुषस्य च। मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्भवः ॥६८॥
सृष्टिश्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मन्ब्रह्मोद्भवा सदा। पाता विष्णुश्च संहर्ता शिवः शश्वच्छिवप्रदः ॥६९॥
दत्तदत्तं ज्ञानमिदं राम महयं च पुष्करे। दीक्षाकाले च माघ्यां च मुनिप्रवरसंनिधौ ॥७०॥
इत्युक्त्वा कार्तवीर्यश्च रामं नत्वा च सस्मितः। आरुरोह रथं शीघ्रं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥७१॥
रामस्ततो राजसैन्यं ब्रह्मास्त्रेण जघान ह। नृपं पाशुपतेनैव लीलया श्रीहरिं स्मरन् ॥७२॥
एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुंधराम्। रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवं स्मरन् ॥७३॥
गर्भस्थं मातुरङ्कस्थं शिशुं वृद्धं च मध्यमम्। जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञापालनाय वै ॥७४॥
कार्तवीर्यश्च गोलोकं त्वगमत्कृष्णसंनिधिम्। जगाम परशुरामश्च स्वालयं श्रीहरिं स्मरन् ॥७५॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं दृष्ट्वा महेश्वरः। पर्शुना रमणं दृष्ट्वा परशुरामं चकार तम् ॥७६॥
देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः। सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं राममूर्ध्नि च नारद ॥७७॥

ष्ठात्री देवी, समस्त शक्तिस्वरूपिणी, समस्त ज्ञानस्वरूपा, सर्वरूपा और दुर्गतिनाशिनी देवी को 'दुर्गा' कहा जाता है ॥६५॥ वाणी की अधिष्ठात्री देवी को, जो सदा शास्त्र-ज्ञान प्रदान करती हैं और भगवान् श्रीकृष्ण के कण्ठ से उत्पन्न है, 'सरस्वती देवी' कहते हैं ॥६६॥ वह ईश्वरी मूलप्रकृति आदि में स्वयं पांच रूपों में प्रकट होती है और अनन्तर सृष्टि-क्रम से अपनी कला द्वारा बहुत रूपों में हो जाती है ॥६७॥ अतः विश्व की समस्त स्त्रियाँ प्रकृति के अंश से और पुरुष (पुरुषोत्तम) के अंश से उत्पन्न हैं, क्योंकि सृष्टिकाल में बिना माया के जन्म सम्भव नहीं होता है ॥६८॥ हे ब्रह्मन् ! प्रत्येक विश्व में सृष्टि का सर्जन ब्रह्मा ही करते हैं, सदा पालन विष्णु करते हैं और निरन्तर शिव (कल्याण) प्रद शिव संहार करते हैं ॥६९॥ हे राम ! यह ज्ञान दत्तात्रेय ने मुझे पुष्कर क्षेत्र में माघी पूर्णिमा के दिन मुनिश्रेष्ठ के समीप प्रदान किया था ॥७०॥ राम से इतना कह कर कार्त्तवीर्य्य ने राम को नमस्कार किया और धनुष बाण लेकर शीघ्र रथ पर बैठ गया ॥७१॥ अनन्तर राम ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर राजसेनाओं का विनाश किया और श्रीहरि का स्मरण करते हुए लीला पूर्वक राजा को पाशुपत अस्त्र द्वारा मार डाला ॥७२॥ इस भाँति राम ने शिव के स्मरणपूर्वक क्रमशः इस पृथ्वी को लीलापूर्वक इक्कीस बार भूपविहीन किया ॥७३॥ राम ने अपनी प्रतिज्ञा के रक्षणार्थ माता के गर्भ एवं गोद में स्थित शिशुओं, वृद्धों एवं युवा क्षत्रियों का विनाश किया। ॥७४॥ निधन होने पर कार्त्तवीर्य्य गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के समीप चला गया और परशुराम भी प्रसन्न होकर श्री हरि का स्मरण करते हुए वहाँ से चले गये ॥७५॥ महेश्वर ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय करते तथा पर्शु (फरसे) से ही रमण करते देखकर 'परशुराम' उनका नामकरण किया ॥७६॥ हे नारद ! देवगण, मुनिवृन्द, देवियों एवं सिद्धों, गन्धर्वों और किन्नर गणों ने राम के शिर पर पुष्पों की वर्षा की ॥७७॥ स्वर्ग में

स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुर्हर्षशब्दो बभूव ह। यशसा चैव परशुरामस्याऽऽपूरितं जगत् ॥७८॥
ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च वाल्मीकिश्च्यवनस्तथा। जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षितः ॥७९॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः सानन्दाश्रुसमन्विताः। दूर्वापुष्पकराः सर्वे कुर्वन्तो मङ्गलाशिषः ॥८०॥
प्रणनाम च तान्रामो दण्डवत्पतितो भुवि। क्रोडे चकार ब्रह्माऽऽदौ क्रमात्तातेति संवदन्[1] ॥८१॥
तमुवाचाथ परशुरामं ब्रह्मा जगद्गुरुः। वेदसारं नीतियुतं परिणामसुखावहम् ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राम प्रवक्ष्यामि सर्वसंपत्करं परम्। काण्वशाखोक्तवचनं सत्यं वै सर्वसंमतम् ॥८३॥
पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतमः परः। जनको जन्मदानाच्च पालनाच्च पिता स्मृतः ॥८४॥
गरीयाञ्जन्मदातुश्च सोऽन्नदाता पिता मुने। विनाऽन्नं नश्वरो देहो न नित्यं पितुरुद्भवः ॥८५॥
तयोः शतगुणं माता पूज्या मान्या च वन्दिता। गर्भधारणपोषाभ्यां सैव प्रोक्ता गरीयसी ॥८६॥
तेभ्यः शतगुणं पूज्योऽभीष्टदेवः श्रुतौ श्रुतः। ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः ॥८७॥
गुरुवद्गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी ततोऽधिका। देवे रुष्टे गुरू रक्षेद् गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥८८॥

दुन्दुभी बजने लगी, देवों ने महान् हर्ष प्रकट किया। परशुराम के यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो गया ॥७८॥ पश्चात् ब्रह्मा, भृगु, शुक्र, वाल्मीकि, च्यवन और जमदग्नि अत्यन्त हर्षित होकर ब्रह्मलोक से वहाँ आये ॥७९॥ सभी लोग रोमाञ्चित शरीर एवं आनन्द के आँसू से युक्त थे, दूर्वा और पुष्प हाथ में लिए मंगल आशीर्वाद दे रहे थे ॥८०॥ उन्हें देखकर राम ने भूमि में लेट कर दण्डवत् प्रणाम किया। पहले ब्रह्मा ने गोद में लिया, फिर हे तात! कह कर हर्ष प्रकट किया ॥८१॥ जगद्गुरु ब्रह्मा ने परशुराम से वेद का सारभाग, नीतिपूर्ण एवं परिणाम में सुखदायक वचन कहा ॥८२॥

ब्रह्मा बोले—हे राम! मैं तुम्हें समस्तसम्पत्तिप्रद, श्रेष्ठ, सत्य और सर्वसम्मत काण्वशाखा का वचन बता रहा हूँ, सुनो। सभी पूज्य गणों में इष्टदेव परम पूज्य होता है। (कोई) जन्म देने के कारण जनक और पालन करने के नाते पिता कहलाता है ॥८३-८४॥ हे मुने! उस जन्मदाता से अन्नदाता पिता श्रेष्ठ होता है क्योंकि बिना अन्न के देह नष्ट हो जाती है और पिता से उत्पन्न होना नित्य नहीं है ॥८५॥ उन दोनों में माता सौ गुनी अधिक पूज्या, मान्या एवं वन्दिता होती है। गर्भ धारण तथा पोषण करने के नाते वह श्रेष्ठ कही गयी है ॥८६॥ इन लोगों से सौ गुना अधिक अभीष्ट देव पूज्य है, ऐसा वेद में सुना गया है। ज्ञान, विद्या और मन्त्र देने वाला गुरु अभीष्टदेव से भी श्रेष्ठ है ॥८७॥ गुरुवत् गुरुपुत्र भी सम्माननीय होता है और गुरुपत्नी उससे भी अधिक। क्योंकि देवता के रुष्ट होने पर गुरु रक्षक होता है और गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं ॥८८॥ गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु और गुरु महेश्वर

१क. संरुदन्।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः ॥८९॥
गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानं च हरिभक्तिदम् । हरिभक्तिप्रदाता यः को वा बन्धुस्ततः परः ॥९०॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यतो लभेत् । लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत्को वा बन्धुस्ततः परः ॥९१॥
गुरुदत्तं सुमन्त्रं च जप्त्वा ज्ञानं ततो लभेत् । सर्वज्ञत्वाच्च सिद्धिं च को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥९२॥
सुखं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया । यया पूज्योऽपि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥९३॥
विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न यजेद्गुरुम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं लभते नात्र संशयः ॥९४॥
दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्या भजेद्गुरुम् । तिर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु ॥९५॥
अभीष्टदेवः श्रीकृष्णो गुरुस्ते शंकरः स्वयम् । शरणं गच्छ हे पुत्र देवपूज्यतमं गुरुम् ॥९६॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपा त्वया पृथ्वी कृता यतः । प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिवं शरणं व्रज ॥९७॥
शिवां च शिवरूपं च शिवदं शिवकारणम् । शिवाराध्यं शिवं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज ॥९८॥
गोलोकनाथो भगवानंशेन शिवरूपधृक् । य इष्टदेवः स गुरुस्तमेव शरणं व्रज ॥९९॥
आत्मा कृष्णः शिवो ज्ञानं मनोऽहं सर्वजीविषु । प्राणा विष्णुः सा प्रकृतिः सर्व शक्तियुता सुत ॥१००॥

देव हैं, गुरु ही परब्रह्म तथा ब्राह्मण से भी अधिक प्रिय हैं ॥८९॥ गुरु ज्ञान प्रदान करते हैं, जिससे हरि की भक्ति प्राप्त होती है। फिर जो भगवान् की भक्ति प्रदान करता है उससे बढ़कर दूसरा कौन बन्धु हो सकता है? ॥९०॥ अज्ञान रूपी अन्धकार से आच्छन्न प्राणी जिसके द्वारा ज्ञानरूपी दीपक प्राप्त करता है और प्राप्त करके निर्मल दर्शन करता है उससे बढ़कर अन्य कौन बन्धु है? ॥९१॥ गुरु के दिये हुए मंत्र का जप करके (शिष्य) उससे ज्ञान प्राप्त करता है और सर्वज्ञता एवं सिद्धि को भी प्राप्त कर सकता है, अतः उससे बढ़कर अन्य कौन बन्धु हो सकता है? ॥९२॥ गुरु की दी हुई विद्या द्वारा सर्वत्र सुख से जीतता है, और उस (विद्या) से जगत् में पूज्य होता है, अतः उससे अधिक बन्धु कौन है? ॥९३॥ जो मूर्ख विद्या से या धन से अन्धा होकर गुरु की अर्चना नहीं करता है, उसे ब्रह्महत्या आदि पाप का भागी होना पड़ता है, इसमें संशय नहीं ॥९४॥ जो व्यक्ति दरिद्र, पतित और क्षुद्र गुरु को मनुष्य समझकर सेवा करता है, वह तीर्थ-स्नान करने पर भी पवित्र नहीं होता है और न कर्मों का अधिकारी ही होता है ॥९५॥ भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे अभीष्ट देव हैं और शिव जी स्वयं गुरु हैं, अतः हे पुत्र! देवों से भी अधिक पूजनीय गुरु की शरण में जाओ ॥९६॥ जिसके द्वारा तुमने इक्कीस बार इस वसुन्धरा को निःक्षत्रिय किया है और जिससे भगवान् की भक्ति प्राप्त की है, उस शिव की शरण में जाओ ॥९७॥ शिवा (भवानी) रूप, शिवरूप, शिवप्रद, शिवकारण, शिवा के आराध्य-देव एवं शान्त गुरु शिव की शरण में जाओ ॥९८॥ गोलोकाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही अंश से शिवरूप धारण करते हैं। जो इष्टदेव है, वही गुरु है, अतः उसकी शरण में जाओ ॥९९॥ हे सुत! समस्त जीवों के आत्मा भगवान् कृष्ण हैं, शिव ज्ञान हैं, मैं मन हूँ, विष्णु प्राण हैं और वह प्रकृति समस्त शक्ति से युक्त है ॥१००॥

ज्ञानदं ज्ञानरूप च ज्ञानबीजं सनातनम् । मृत्युंजयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०१॥
ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम् ॥१०२॥
प्रकृतिर्लक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा यमीश्वरम् । कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०३॥
इत्युक्त्वा मुनिभिः सार्धं जगाम कमलोद्भवः । रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० भृगोः कैलासगमनोपदेशो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरेश्च कवचं धृत्वा कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् । रामो जगाम कैलासं नमस्कर्तुं शिवं गुरुम् ॥१॥
गुरुपत्नीं शिवामम्बां द्रष्टुं गुरुसुतौ च तौ । गुणैर्नारायणसमौ कार्तिकेयगणेश्वरौ ॥२॥
मनोयायी महात्मा स भृगुः संप्राप्य तत्क्षणम् । ददर्श नगरं रम्यमतीव सुमनोहरम् ॥३॥
शुद्धस्फटिकसंकाशैर्मणिभिः सुमनोहरैः । [1]सुवर्णभूमिसदृशै राजमार्गैर्विराजितम् ॥४॥

ज्ञानप्रद, ज्ञानरूप, ज्ञान के बीज, सनातन, मृत्यु के विजेता और काल के भी काल उस गुरु की शरण में जाओ ॥१०१॥ ब्रह्मज्योतिःस्वरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ रूप धारण करने वाले, सर्वज्ञाता एवं सनातन भगवान् की शरण में जाओ ॥१०२॥ प्रकृति ने एक लाख वर्ष तक तप करके जिस ईश्वर को मनोहर एवं प्रियपति के रूप में प्राप्त किया है, उस गुरु की शरण में जाओ ॥१०३॥ हे नारद! इतना कहकर ब्रह्मा मुनियों समेत चले गये और राम ने कैलाश जाने का निश्चय किया ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में भृगु को कैलास-गमन-उपदेश-वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

कैलास का वर्णन

नारायण बोले—राम ने भगवान् का कवच धारण करके पृथिवी को निःक्षत्रिय किया और पश्चात् गुरु शिव को नमस्कार करने के लिए तथा गुरुपत्नी माता पार्वती और गुणों में नारायण के समान कार्तिकेय एवं गणेश नामक गुरुपुत्रों को देखने के लिए कैलास की यात्रा की ॥१-२॥ मन के समान वेग-गामी महात्मा भृगु ने उसी क्षण कैलास पहुँच कर रम्य एवं अति मनोहर उस नगर को देखा, जो शुद्ध स्फटिक के समान मणियों एवं अतिमनोहर सुवर्ण-भूमि के समान राजमार्गों (सड़कों) से सुशोभित, सिन्दूर

---

१. क. ०र्णल्यभास० ।

सिन्दूरारुणवर्णैश्च वेष्टितं मणिवेदिभिः । संयुक्तं मुक्तानिकरैः पूरितं मणिमण्डपैः ॥५॥
यक्षाणामालयैर्दिव्यैः संयुक्तं शतकोटिभिः । कपाटस्तम्भसोपानैः शोभितैर्मणिनिर्मितैः ॥६॥
सुवर्णकलशैर्दिव्यै राजतैः श्वेतचामरैः । रत्नकाञ्चनपूर्णैश्च यक्षेन्द्रगणवेष्टितैः ॥७॥
रत्नभूषणभूषाढ्यैर्दीपितैः सुन्दरीगणैः । बालिकाभिर्बालकैश्च चित्रपुत्तलिकाकरैः ॥८॥
क्रीडद्भिः सस्मितैः शश्वत्स्वच्छन्दं च विराजितैः । पारिजातद्रुमगणैः स्वर्णदीतीरनीरजैः ॥९॥
आकीर्णं पुष्पजालैश्च पुष्पितैश्च सुगन्धिभिः । कल्पवृक्षाश्रितैः सिद्धैः कामधेनुपुरस्कृतैः ॥१०॥
सिद्धविद्यासु निपुणैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् । त्रिलक्षयोजनोच्छ्रायैर्वटवृक्षैरथाक्षयैः ॥११॥
शतयोजनविस्तीर्णैः शतस्कन्धसमन्वितैः । असंख्यशाखानिकरैरसंख्यफलसंयुतैः ॥१२॥
नानापक्षिगणाकीर्णैः सुमनोहरशब्दितैः । कम्पितैः शीतवातेन मण्डितं च सुगन्धिना ॥१३॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण सरसां च शतेन च । सिद्धेन्द्रालयलक्षैश्च मणिरत्नविकारजैः ॥१४॥
रामश्च दृष्ट्वा नगरमतिसंहृष्टमानसः । ददर्श पुरतो रम्यं श्रीयुक्तं शंकरालयम् ॥१५॥
सुवर्णमूल्यशतकैर्मणिभिः स्वर्णवर्णकैः । खचितं रत्नसारैश्च रचितं विश्वकर्मणा ॥१६॥
त्रिपञ्चयोजनोच्छ्रायं चतुर्योजनविस्तृतम् । चतुरस्रं चतुष्कोणं प्राकारं सुमनोहरम् ॥१७॥
द्वारं रत्नकपाटेन नानाचित्रान्वितेन च । मणीन्द्रवेदिभिर्युक्तं मणिस्तम्भविराजितैः ॥१८॥

के समान लालवर्ण की मणिवेदियों से वेष्टित मोतियों के समूहों से युक्त, मणिनिर्मित मण्डपों से पूर्ण और यक्षों के दिव्य सौ करोड़ गृहों से युक्त था। उन (गृहों) में मणि के बने किवाड़, खम्भे और सीढ़ियाँ थीं ॥३-६॥ उनमें सुवर्ण के दिव्य कलश, चांदी के श्वेत चामर, रत्नों और सुवर्णों के ढेर, यक्षेन्द्रों के समूह रत्नों के भूषणों से अत्यन्त भूषित सुन्दरी-गण, हाथों में कठपुतली लिये बालक-बालिकागण, जो मन्द मुसुकान समेत स्वच्छन्द होकर निरन्तर खेल रहे थे, विराजमान थे। स्वर्ग की नदी (गंगा) के किनारे उत्पन्न होने वाले पारिजात वृक्ष थे। सुगन्धित पुष्पों के समूह बिखरे हुए थे। कल्पवृक्षों के आश्रय में सिद्धगण, कामधेनु, सिद्धविद्याओं में निपुण पुण्यवान् लोग थे। वहाँ अक्षय वट वृक्ष थे जो तीन लाख योजन ऊँचे, सौ योजन विस्तीर्ण, सौ स्कन्धों, असंख्य शाखाओं और असंख्य फलों से युक्त, अति मनोहर शब्द करने वाले असंख्य पक्षिगणों और शीतल सुगन्धित वायु से कम्पित थे। वह नगर सहस्र वाटिकाओं, सौ नदियों और मणिरत्नों के बने एक लाख सिद्धों के गृहों से पूर्ण था ॥७-१४॥ इस प्रकार नगर को देखकर राम का चित्त अति प्रसन्न हुआ। अनन्तर उन्होंने सामने रम्य एवं श्रीसम्पन्न शंकर का भवन देखा ॥१५॥ सौ सुवर्ण मूल्य वाली एवं सोने के समान वर्ण वाली मणियों और रत्नों के सार भागों से विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया था ॥१६॥ वह पन्द्रह योजन ऊँचे, चार योजन चौड़े, चौकोर और अति मनोहर प्राकार (चहार दीवारी) से घिरा था ॥१७॥ अनेक भाँति के चित्रों से चित्रित रत्नों के किवाड़ से विभूषित उसका द्वार था, जो उत्तम मणि की वेदियों और मणि के स्तम्भों से युक्त था ॥१८॥ हे

तद्दक्षिणे वृषेन्द्रं च वामे सिंहं च नारद। नन्दीश्वरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयंकरम्॥१९॥
विशालाक्षं च बाणं च विरूपाक्षं महाबलम्। विकटाक्षं भास्कराक्षं रक्ताक्षं विकटोदरम्॥२०॥
संहारभैरवं कालभैरवं च भयंकरम्। रुरुभैरवमीशाभं महाभैरवमेव च॥२१॥
कृष्णाङ्गभैरवं चैव क्रोधभैरवमुल्बणम्। कपालभैरवं चैव रुद्रभैरवमेव च॥२२॥
सिद्धेन्द्रादीन्रुद्रगणान्विद्याधरसुगुह्यकान्। भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान्॥२३॥
वेतालान्दानवांश्चैव योगीन्द्रांश्च जटाधरान्। यक्षान्किंपुरुषांश्चैव किन्नरांश्च ददर्श ह॥२४॥
तान्दृष्ट्वा नन्दिकेशाज्ञां गृहीत्वा भृगुनन्दनः। तान्संभाष्याभ्यन्तरं च जगामाऽऽनन्दसंप्लुतः॥२५॥
रत्नेन्द्रसारखचितं ददर्श शतमन्दिरम्। अमूल्यरत्नकलशैर्ज्वलद्भिश्च विराजितम्॥२६॥
अमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्मलदर्पणैः। हीरसारविकारैश्च कपाटैश्च विराजितम्॥२७॥
गोरोचनाभिर्मणिभिर्युतं स्तम्भसहस्रकैः। मणिसारविकारैश्च सोपानैः परिशोभितम्॥२८॥
ददर्शाभ्यन्तरं द्वारं नानाचित्रैश्च चित्रितम्। माणिक्यमुक्ताग्रथितैर्मालाजालैर्विराजितम्॥२९॥
ददर्श कार्तिकेयं च वामे दक्षे गणेश्वरम्। वीरभद्रं महाकायं शिवतुल्यपराक्रमम्॥३०॥
प्रधानपार्षदगणान्क्षेत्रपालांश्च नारद। रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान्॥३१॥
तान्संभाष्य भृगुः शीघ्रं महाबलपराक्रमः। पर्शुहस्तः स परशुरामो गन्तुं समुद्यतः॥३२॥
गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह। निद्रितो निद्रया युक्तो महादेवोऽधुनेति च॥३३॥

नारद! उसके दाहिने भाग में नन्दी, बायें भाग में सिंह, नन्दीश्वर, महाकाल, भयंकर पिंगलाक्ष, विशालाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयंकर कालभैरव, रुरुभैरव, ईशाभ, महाभैरव, कृष्णांगभैरव, क्रोधभैरव, उल्बण, कपालभैरव और रुद्रभैरव थे॥१९-२२॥ अनन्तर सिद्धेन्द्र आदि रुद्र गण, विद्याधर, गुह्यकगण, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, दानव, जटाधारी योगीन्द्रगण, यक्षगण, किम्पुरुषों और किन्नरों को देखा॥२३-२४॥ उन्हें देखने के पश्चात् भृगुनन्दन (राम) नन्दिकेश्वर की आज्ञा से सबसे बात-चीत करके आनन्दमग्न होते हुए भीतर चले गये॥२५॥ वहाँ उन्होंने सैकड़ों मन्दिरों को देखा, जो रत्नेन्द्र के सार भाग से खचित, अमूल्य रत्नों के समुज्ज्वल कलशों से सुशोभित, अमूल्य रत्नों के बने मोती जैसे निर्मल दर्पणों और हीरों के सारभाग से बने किवाड़ों से विराजित, गोरोचन एवं मणि के सहस्र स्तम्भों से युक्त और मणि के सारभाग से बनी सीढ़ियों से परिशोभित थे। फिर अनेक चित्रों से चित्रित, तथा माणिक्य एवं मोती से बँधे मालाजाल से विराजित वहाँ का भीतरी दरवाजा देखा॥२६-२९॥ वामभाग में कार्तिकेय को तथा दाहिने गणेश्वर, महाकाय और शिव के समान पराक्रमी वीरभद्र को देखा॥३०॥ हे नारद! प्रधान पार्षदगणों समेत क्षेत्रपालों को देखा जो रत्नों के सिंहासनों पर स्थित एवं रत्नभूषणों से भूषित थे॥३१॥ हाथ में फरसा लिए महाबलवान् एवं पराक्रमी परशुराम उन लोगों से सम्भाषण करके आगे जाने के लिए तैयार हो गये॥३२॥ उन्हें जाते हुए देख कर गणेश ने कहा—थोड़ी देर रुको, महादेव इस समय निद्रायुक्त होकर शयन कर रहे हैं॥३३॥ हे भ्रातः!

ईश्वराज्ञां गृहीत्वाऽहमत्राऽऽगत्य क्षणान्तरे । त्वया सार्धं गमिष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र सांप्रतम् ॥३४॥
गणेशवाक्यं परशुरामः श्रुत्वा महाबलः । बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कैलासवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

परशुराम उवाच

यास्याम्यन्तः पुरं भ्रातः प्रणामं कर्तुमीश्वरम् । प्रणम्य मातरं भक्त्या यास्यामि त्वरितं गृहम् ॥१॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्वा पृथ्वीं च लीलया । कार्तवीर्यः सुचन्द्रश्च हतो यस्य प्रसादतः ॥२॥
नानाविद्या यतो लब्ध्वा नानाशास्त्रं सुदुर्लभम् । तं गुरुं जगतां नाथं द्रष्टुमिच्छामि सांप्रतम् ॥३॥
सगुणं निर्गुणं चैव भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यं सत्यस्वरूपं च ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥४॥
स्वेच्छामयं दयासिन्धुं दीनबन्धुं मुनीश्वरम् । आत्मारामं पूर्णकामं व्यक्ताव्यक्तं परात्परम् ॥५॥
परापराणां स्रष्टारं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । पुराणं परमात्मानमीशानं त्वादिमव्ययम् ॥६॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलदं शान्तं सर्वैश्वर्यप्रदं वरम् ॥७॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं शरणागतवत्सलम् । भक्ताभयप्रदं भक्तवत्सलं समदर्शनम् ॥८॥

मैं क्षण भर में वहाँ जाकर उनसे आज्ञा लेकर अभी आ रहा हूँ, और तुम्हारे साथ वहाँ चलूँगा ॥३४॥ गणेश की बातें सुनकर बृहस्पति के समान वक्ता तथा महाबली परशुराम ने उनसे कहना प्रारम्भ किया ॥३५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में कैलास-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अध्याय ४२

परशुराम और गणपति का परस्पर विवाद

परशुराम बोले—हे भ्रातः ! मैं भक्तिपूर्वक ईश्वर (शिव) और माता पार्वती को प्रणाम करने के लिए अन्तःपुर जा रहा हूँ, पश्चात् मैं शीघ्र चला जाऊँगा ॥१॥ क्योंकि जिसके प्रसाद से मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को निर्भूप किया—कार्तवीर्य और सुचन्द्र का वध किया एवं अनेक भाँति की विद्या तथा अनेक दुर्लभ अस्त्र प्राप्त किये, उन जगत् के नाथ गुरु का मैं इस समय दर्शन करना चाहता हूँ ॥३॥ वे सगुण, निर्गुण, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, सत्यस्वरूप, ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप और सनातन हैं तथा सत्य, स्वेच्छामय, दया के सागर, दीनों के हितैषी, मुनीश्वर, आत्मा में रमण करने वाले, पूर्णकाम, व्यक्त (प्रकट) अव्यक्त (अप्रकट), परे से भी परे, पर-अपर की सृष्टि करने वाले, बहुतों से आहूत, बहुतों से स्तुत, पुराणरूप, परमात्मा, ईशान, आदिरूप, अव्यय (अविनाशी), सम्पूर्ण मंगलों के मंगल, समस्त मंगल प्रदायक, शान्त, सम्पूर्ण ऐश्वर्य देने वाले, श्रेष्ठ, आशुतोष, प्रसन्नमुख, शरणागत के प्रेमी, भक्तों को अभय देने वाले, भक्तवत्सल और समदर्शी हैं ॥४-८॥

इत्थं परशुरामोऽस्थादुक्त्वा गणपतेः पुरः । वाचा मधुरया तत्र समुवाच गणेश्वरः ॥९॥

गणेश्वर उवाच

क्षणं तिष्ठ क्षणं तिष्ठ शृणु भ्रातरिदं वचः । रहःस्थलस्थितो नैव द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान् ॥१०॥
स्त्रीसंयुक्तं च पुरुषं यः पश्यति नराधमः । करोति रसभङ्गं वा कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम् ॥११॥
तत्र तिष्ठति पापीयान्यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विशेषतश्च पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विजम् ॥१२॥
रहःसुरतसंसक्तं नहि पश्येद्विचक्षणः । कामतः कोपतो वाऽपि यः पश्येत्सुरतोन्मुखम् ॥१३॥
स्त्रीवियोगो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु । श्रोणीं वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः ॥
कामतोऽपि विमूढश्च [1]सोऽन्धो भवति निश्चितम् ॥१४॥
गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः । तमुवाच महाकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने ॥१५॥

परशुराम उवाच

अहो श्रुतं किं वचनमपूर्वं नीतिसंयुतम् । इदमेवमहो नैवं श्रुतमीश्वरवक्त्रतः ॥१६॥
श्रुतं श्रुतौ वाक्यमिदं कामिनां च विकारिणाम् । निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि ॥१७॥
यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक । यथादृष्टं करिष्यामि मत्कार्यं समयोचितम् ॥१८॥

इस प्रकार कहकर परशुराम गणपति के सामने खड़े हो गये। तब गणनायक ने मधुरवाणी द्वारा उसका उत्तर देना आरम्भ किया ॥९॥

गणेश्वर बोले—हे भ्रातः ! क्षणमात्र ठहरो और मेरी बात सुनो—एकान्तस्थल में स्थित स्त्री-पुरुष को नहीं देखना चाहिए ॥१०॥ क्योंकि जो नराधम स्त्रीयुक्त पुरुष को देखता है अथवा रसभंग करता है, उसे कालसूत्र नामक नरक में निश्चित जाना पड़ता है ॥११॥ हे द्विज ! चन्द्रमा-सूर्य के समय तक उस पापी को वहाँ रहना पड़ता है । विशेषतया पिता, गुरु, राजा और ब्राह्मण को एकान्त में सुरत-संसक्त जानकर विद्वान् उन्हें न देखें। क्योंकि कामना से या क्रोधवश जो सुरतोन्मुख प्राणी को देखता है, उसे सात जन्मों तक निश्चित स्त्रीवियोग होता है। और जो काम भाव से परस्त्री का नितम्ब, वक्षःस्थल और मुख देखता है, वह महामूढ़ निश्चित अन्धा होता है ॥१२-१४॥ हे मुने ! गणेश की बातें सुनकर भृगुनन्दन ने हँसकर क्रुद्धभाव से निष्ठुर वचन कहना आरम्भ किया ॥१५॥

परशुराम बोले—अहो ! आज मैंने नीतियुक्त और अपूर्व वाक्य सुना, क्योंकि ईश्वर (शिव) के मुख से मैंने ऐसा कभी नहीं सुना था ॥१६॥ कामी और विकारयुक्त पुरुषों के लिए ही ऐसी बातें वेद में बतायी गयी हैं, ऐसा मैंने सुना है । निर्विकार बच्चे को कोई दोष नहीं लगता । इसलिए हे भ्रातः ! मैं अन्तःपुर जा रहा हूँ, बालक ! तुम्हें, क्या करना है, रुको (अर्थात् जाने से मुझे मत रोको) ॥१७॥ मैं वहाँ जाकर जैसा देखूंगा वैसा समयोचित कार्य करूँगा ॥१८॥ वे तुम्हारे ही पिता माता हैं, ऐसा भी तो नहीं कहा

१क. षण्ढो भ०।

तवैव तातो माता चत्येवं नैव निरूपितम्। जगतां पितरौ तौ च पावतीपरमेश्वरौ ॥१९॥
पार्वती स्त्री पुमाञ्छंभुरिति कैर्न निरूपितः। सर्वरूपः शंकरश्च सर्वरूपा च पार्वती ॥२०॥
गुणातीतस्यका क्रीडा तद्भङ्गो वा कुतो विभो। क्रीडा लज्जा भीतिभङ्गो ग्राम्यस्यैव न चेशितुः ॥२१॥
स्तनन्धयं च मां दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत्। लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य च सा कुतः ॥२२॥
लज्जा लज्जां किमाप्नोति तापं किं वा हुताशनः। शीतं शैत्यमहोभ्रार्तनिदाघो दाहमेव च ॥२३॥
भीतेर्भीतिमवाप्नोति मृत्योर्मृत्युर्बिभेति किम्। कुतो ज्वरो ज्वरं हन्ति व्याधिं व्याधिश्च जीर्यति ॥२४॥
संहर्तारं च संहर्ता कालः कालाद्बिभेति किम्। स्रष्टारं सृजते स्रष्टा पाता किं पाति ते मते ॥२५॥
क्षुत्क्षुधं समवाप्नोति तृष्णा तृष्णां प्रयाति किम्। निद्रा निद्रां च शोभां श्रीः शान्तिः शान्तिं च ते मते ॥२६॥
पुष्टिः पुष्टिं किमाप्नोति तुष्टिस्तुष्टिं क्षमा क्षमाम्। आत्मनः परमात्माऽस्ति शक्तिः शक्त्या बिभेति किम् ॥२७॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ स्वात्मनैते न बाधिताः। दया न बद्धा दयया नेच्छा बद्धेच्छया प्रभो ॥२८॥
ज्ञानबुद्धयोः को विकारो जरां नो बाधते जरा। चिन्ता न चिन्तया ग्रस्ता चक्षुश्चक्षुर्न पश्यति ॥२९॥
हर्षो मुदं किं प्राप्नोति शोकं शोको न बाधते। का विपत्तिर्विपत्तेश्च संपत्तिः संपदः कुतः ॥३०॥

गया है। क्योंकि वे पार्वती और परमेश्वर (शिव) समस्त जगत् के माता-पिता हैं ॥१९॥ यह कोई भी नहीं कहता कि पार्वती स्त्री और शिव पुरुष हैं। शिव सर्वरूप हैं और पार्वती सर्वरूपा हैं। हे विभो! गुणों से परे रहने वाले की कैसी क्रीड़ा और कैसा उसका भंग करना? (रति) क्रीड़ा, लज्जा, भय और भंग ग्राम्य जनों के लिए है ईश्वर के लिए नहीं ॥२०२१॥ दुग्धपान करने वाले मुझ बच्चे को देखकर माता-पिता को लज्जा क्या हो सकती है? लज्जा को और लज्जाधीश्वर को लज्जा कहाँ? ॥२२॥ क्या लज्जा लज्जा को प्राप्त करती है या अग्नि ताप को प्राप्त करता है? हे भाई! शीत को शीत, तेज को दाह (गर्मी), भय को भय और मृत्यु को मृत्यु प्राप्त होती है क्या? ज्वर ज्वर का और रोग रोग का नाश करता है क्या? ॥२३-२४॥ संहर्त्ता संहर्त्ता से और कला काल से भयभीत होता है क्या? क्या तुम्हारे मत से स्रष्टा सृष्टिकर्ता का सर्जन करता है और रक्षक रक्षक की रक्षा करता है? ॥२५॥ क्षुधा क्षुधा को और तृष्णा तृष्णा को प्राप्त होती है क्या? तुम्हारे मत से निद्रा निद्रा को, शोभा शोभा को, शान्ति शान्ति को, पुष्टि पुष्टि को, तुष्टितुष्टि को और क्षमा क्षमा को प्राप्त होती है क्या? आत्मा से परमात्मा और शक्ति से शक्ति भयभीत होती है क्या? ॥२६-२७॥ हे प्रभो! काम-क्रोध, लोभ-मोह ये अपने से नष्ट नहीं होते हैं। दया दया से अथवा इच्छा इच्छा से आबद्ध नहीं होती है ॥२८॥ ज्ञान-बुद्धि में विकार होता है क्या? जरा (बुढ़ाई) जरा से नष्ट नहीं होती है। चिन्ता चिन्ता से ग्रस्त नहीं होती है और आँख आँख को नहीं देखती है ॥२९॥ क्या हर्ष को हर्ष होता है? शोक शोक को नष्ट नहीं करता है। विपत्ति को विपत्ति क्या? और सम्पत्ति को सम्पत्ति कहां होती है? ॥३०॥

मेधाया धारणाशक्तिः स्मृतेर्वा स्मरणं कुतः। न दग्धः स्वप्रतापेन विवस्वानिति संमतः॥३१॥
विपरीतमतो भ्रातस्त्वयैवाऽऽचारितोऽधुना। न श्रुतोऽयं गुरुमुखान्न दृष्टो न श्रुतौ श्रुतः॥३२॥
इत्युक्त्वा चापि परशुरामः शश्वत्प्रहस्य सः। शीघ्रं गन्तुं मनश्चक्रे तद्गृहाभ्यन्तरं मुदा॥३३॥
तच्च रामवचः श्रुत्वा जितक्रोधो गणेश्वरः। शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च प्रहस्य तमुवाच ह॥३४॥

गणपतिरुवाच

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानं प्राप्नोति तद्विदः। पितुर्भ्रातुर्मुखाज्ज्ञानं दुर्लभं भाग्यवाँल्लभेत्॥३५॥
श्रुतं ज्ञानं विशिष्टं च ज्ञानिनामपि दुर्लभम्। किंचिन्मे त्वं मन्दबुद्धेः शृणु भ्रातर्निवेदनम्॥३६॥
यो निर्गुणः स निर्लिप्तः शक्तिभिर्नहि संयुतः। सिसृक्षुराश्रितः शक्त्या निर्गुणः सगुणो भवेत्॥३७॥
यावन्ति च शरीराणि भोगार्हाणि महामुने। प्राकृतानि च सर्वाणि विना श्रीकृष्णविग्रहम्॥३८॥
ध्यायन्ति योगिनस्तं च शुद्धज्योतिः स्वरूपिणम्। हस्तपादादिरहितं निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥३९॥
वैष्णवास्तं नमस्यन्ति भक्तानुग्रहकारकम्। कुतो बभूव तज्ज्योतिरहो तेजस्विना विना॥४०॥
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं शरीरं श्यामसुन्दरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम्॥४१॥
अतीवामूल्यसद्रत्नभूषणैश्च विभूषितम्। ज्योतिरभ्यन्तरे मूर्तिं पश्यन्ति कृपया विभोः॥४२॥

मेघा को धारणा शक्ति या स्मृति को स्मरण नहीं होता है और सूर्य अपने प्रताप से कभी भी दग्ध नहीं होते हैं, ऐसा सभी का मत है॥३१॥ हे भ्रातः! इस समय तुमने ही विपरीताचरण किया है। मैंने न तो यह गुरु के मुख से सुना और न वेद में कभी देखा-सुना॥३२॥ इतना कहकर परशुराम ने निरन्तर हँस कर प्रसन्न चित्त से घर के भीतर शीघ्र जाना चाहा॥३३॥ राम की बातें सुनकर क्रोध को जीते हुए तथा शुद्धसत्त्वस्वरूप गणनायक ने हँसकर उनसे कहा॥३४॥

गणपति बोले—अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न प्राणी उसके वेत्ता से ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु पिता और भ्राता के मुख से दुर्लभ ज्ञान को भाग्यवान् ही प्राप्त करता है॥३५॥ हे भ्राता! मैंने ज्ञानियों के लिये भी दुर्लभ विशिष्ट ज्ञान सुना है अतः मुझ मन्द बुद्धि का भी कुछ निवेदन सुनो॥३६॥ जो निर्गुण है, वही निर्लिप्त है, वह शक्ति के साथ नहीं रहता है। सृष्टि करने वाला शक्ति के आश्रित ही रहेगा। एवं निर्गुण ही कभी सगुण हो जाता है॥३७॥ हे महामुने! एक भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर को छोड़कर अन्य जितने शरीर हैं, सब भोग के योग्य एवं प्राकृत हैं॥३८॥ अतः योगी गण उसी निर्गुण का ध्यान करते हैं, जो शुद्ध ज्योतिःस्वरूप, हाथ-पैर आदि से रहित एवं प्रकृति से परे है॥३९॥ भक्तों पर अनुग्रह करने वाले उसी को वैष्ण व लोग नमस्कार करते हैं क्योंकि तेजस्वी के बिना उसकी ज्योति कहाँ सम्भव हो सकती है॥४०॥ उस ज्योति के भीतर श्याम और सुन्दर नित्य शरीर रहता है, जो दो भुजा, हाथ में मुरली, मन्द मुसुकान, पीताम्बर और अति अमूल्य उत्तम रत्नों के भूषणों से भूषित है। योगी लोग उसी विभु की कृपा से ज्योति के भीतर उस मूर्ति को देखते हैं॥४१-४२॥

तदा दास्ये नियुक्तास्ते भवन्त्येवेश्वरेच्छया । योगस्तपो वा दास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥४३॥
यदा सृष्टचन्मुखः कृष्णः ससृजे प्रकृतिं मुदा । तद्योनौ ह्यर्पितं वीर्यं वीर्याड्डिम्भो बभूव ह ॥४४॥
दिव्येन लक्षवर्षेण गर्भाड्डिम्भो विनिर्गतः । तदा बभूव निःश्वासस्ततो वायुर्बभूव ह ॥४५॥
निःश्वासेन समं भ्रातर्मुखबिन्दुर्विनिर्गतः । ततो बभूव सहसा जलराशिर्हरेः पुरः ॥४६॥
तज्जले च स्थितो डिम्भो दिव्यवर्षाणि लक्षकम् । ततो बभूव सहसा विश्वाधारो महाविराट् ॥४७॥
यावन्ति गात्रलोमानि तस्य सन्ति महात्मनः । ब्रह्माण्डानि च तावन्ति विद्यमानानि निश्चितम् ॥४८॥
तत्रैव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । देवा नराश्च मुनयो विद्यमानाश्चराचराः ॥४९॥
महाविराडाश्रयश्च सर्वस्य च जनस्य च । निःश्वासवायुर्भगवान्बभूव श्रीहरेर्मुने ॥५०॥
महाविष्णुश्च कलया ततः क्षुद्रविराडभूत् । तन्नाभिकमले ब्रह्मा शंकरस्तल्ललाटजः ॥५१॥
विष्णुस्तदंशः पाता यः श्वेतद्वीपनिवासकृत् । एवं ते प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥५२॥
स्वयं च स्वांशकलया नानामूर्तिधरो हरिः । तदाऽभवच्च सगुणः सर्वशक्तियुतस्तदा ॥५३॥
कथं लज्जादिरहितः स च स्वेच्छामयो महान् । सर्वदा सर्वभोगार्हः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥५४॥

वे ईश्वर की इच्छा से उनके दास्य कर्म में नियुक्त होते हैं। योग या तप दास्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होता है ॥४३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने जब सृष्टि करना चाहा तब प्रसन्नचित्त से प्रकृति की सृष्टि की और उसकी योनी में वीर्य का निक्षेप किया। वीर्य से डिम्भ (सुवर्ण-पिण्ड) हुआ और वह डिम्भ दिव्य एक लाख वर्ष के उपरांत गर्भ से बाहर निकला। तब निश्वास हुआ उससे वायु उत्पन्न हुआ ॥४४-४५॥ हे भ्रातः! निःश्वास के साथ ही मुख से बिन्दु गिरा, जिससे भगवान् के सामने ही सहसा जल की राशि उत्पन्न हो गई ॥४६॥ उस जल के भीतर वह डिम्भ एक लाख दिव्य वर्ष तक स्थित रहा। उस से सहसा महाविराट् की उत्पत्ति हुई जो विश्व का आधार है ॥४७॥ उस महात्मा (विराट्) के शरीर में जितने लोम हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं ॥४८॥ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव देववृन्द एवं मुनिगण आदि चर-अचर विद्यमान रहते हैं ॥४९॥ सभी जनों का यह महाविराट् आश्रय है। हे मुने! श्रीहरि के निःश्वास से वायु भगवान् हुए और कला से महाविष्णु। उनसे क्षुद्रविराट् (विष्णु) उत्पन्न हुए जिनके नाभिकमल से ब्रह्मा तथा ब्रह्मा के ललाट से शंकर उत्पन्न हुए ॥५०-५१॥ भगवान् के अंश से उत्पन्न होने वाले विष्णु, जो श्वेत द्वीप में निवास करते हैं, सृष्टि के रक्षक हैं। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर होते हैं ॥५२॥ भगवान् स्वयं अपने अंश की कला द्वारा अनेक प्रकार की मूर्ति धारण करते हैं। तब वे सगुण हुए और तब सर्वशक्तिमान् कहलाये ॥५३॥ वे स्वेच्छामय और महान् होते हुए लज्जा आदि से रहित कैसे हैं? वे समस्त शक्ति से युक्त होने के नाते सर्वदा सब भोगों के लिए उपयुक्त हैं ॥५४॥

लज्जा नास्त्येव लज्जायामतोऽयं सर्वसंमतः । या च लज्जावती देवी तस्या लज्जा कुतो गता ॥५५॥
सर्वशक्तिमती दुर्गा प्रकृत्या सा च शैलजा । तस्या लज्जादयः सन्ति सर्वदा सर्वसंमताः ॥५६॥
पञ्चधा प्रकृतिर्या च श्रीकृष्णस्य बभूव ह । राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती ॥५७॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः । प्राणाधिका प्रिया सा च राधाऽऽस्ते तस्य वक्षसि ॥५८॥
विद्याधिष्ठातृदेवी या सावित्री ब्रह्मणः प्रिया । लक्ष्मीर्नारायणस्यैव सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥५९॥
सरस्वती द्विधा भूत्वा कृष्णस्य मुखनिर्गता । [1]सावित्री ब्रह्मणः कान्ता स्वयं नारायणस्य च ॥६०॥
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी या ज्ञानसूः शक्तिसंयुता । सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा कुतो गता ॥६१॥
प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातर्गोलोके च बभूव ह । इमाः प्रधानाः कलया बभूवुर्नैकधा यतः ॥६२॥
विप्रेन्द्र नित्यं वैकुण्ठं ब्रह्माण्डात्परमुच्यते । अविनाशि स्थलं शश्वल्लये प्राकृतिके ध्रुवम् ॥६३॥
तत्र नारायणो देवः कृष्णार्धांशश्चतुर्भुजः । वनमाली पीतवासाः शक्त्या वै पद्मया सह ॥६४॥
स्वयं कृष्णश्च गोलोके द्विभुजः श्यामसुन्दरः । सस्मितो मुरलीहस्तो राधावक्षः स्थलस्थितः ॥६५॥
शश्वद्गोगोपगोपीभिः संयुक्तो गोपरूपधृत् । परिपूर्णतमः श्रीमान्निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥६६॥

यद्यपि लज्जा को लज्जा नहीं होती है, यह सर्वसम्मत है, तथापि जो देवी लज्जावती है, उसकी लज्जा कहाँ चली जायगी ? ॥५५॥ दुर्गा सर्वशक्तिसम्पन्न हैं किन्तु इस समय हिमालय से उत्पन्न होने के नाते प्राकृत हैं। इसलिए उनमें सर्वदा लज्जा आदि वर्तमान रहते हैं, यह सर्वसम्मत है ॥५६॥ भगवान् श्रीकृष्ण की जो प्रकृति—राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती देवी इन पाँच रूपों में परिणत हुई थी, उनमें परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी और प्राणों से अधिक प्रिय जो है, उसका नाम राधा है, जो उनके वक्षःस्थल पर स्थित रहती है ॥५७-५८॥ विद्या की अधिष्ठात्री देवी सावित्री ब्रह्मा की पत्नी हुईं और समस्त सम्पत्ति-स्वरूपा लक्ष्मी नारायण की पत्नी हुई ॥५९॥ भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकल कर सरस्वती दो रूपों में प्रकट हुईं जिसमें एक सावित्री रूप से ब्रह्मा की और स्वयं सरस्वती नारायण की प्रिय पत्नी हुईं ॥६०॥ बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी जो ज्ञानजननी एवं शक्तियुक्त हैं, वह दुर्गा शिव की कान्ता हुई हैं, अतः उनकी लज्जा कहाँ चली जायगी ? ॥६१॥ हे भ्रातः! गोलोक में ही प्रकृति इन पांचों रूपों में परिणत हुई और कला से ये ही प्रधान हैं क्योंकि ये एक ही बार नहीं हुई हैं ॥६२॥ हे विप्रेन्द्र ! नित्य वैकुण्ठलोक ब्रह्माण्ड से श्रेष्ठ और अविनाशी स्थान है। यह प्राकृत लय में भी निरन्तर विद्यमान रहता है ॥६३॥ वहाँ भगवान् कृष्ण के अर्द्धांश भाग विष्णु लक्ष्मी के साथ रहते हैं, जो चार भुजाओं, वनमाला एवं पीताम्बर से सुशोभित हैं और स्वयं श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक में दो भुजा, मन्द मुसुकान तथा हाथ में मुरली लिए राधा के वक्षःस्थल पर स्थित रहते हैं ॥६४-६५॥ वे निरन्तर गोप-गोपी से संयुक्त, गोपवेष धारण किये, परिपूर्णतम, श्रीमान्, निर्गुण,

---

१. क० भारती ब्र० ।

स्वेच्छामयः स्वतन्त्रस्तु परमानन्दरूपधृत् । सुराः कलोद्भवा यस्य षोडशांशो महाविराट् ॥६७॥
यतो भवन्ति विश्वानि स्थूलसूक्ष्मादिकानि च । पुनस्तत्र प्रलीयन्त एवमेव मुहुर्मुहुः ॥६८॥
गोलोक ऊर्ध्वं वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनः । नास्ति लोकस्तदूर्ध्वं च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः ॥६९॥
इदं श्रुतं शंभुवक्त्रान्मया ते कथितं द्विज । क्षणं तिष्ठाधुना भ्रातरीश्वरः सुरतोन्मुखः ॥७०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशपरशुरामसंवादो
नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा वेगतः सुधीः । पर्शुहस्तः स वै रामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः ॥१॥
गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय यत्नतः । वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः ॥२॥
रामस्तं प्रेरयामास हुं कृत्वा तु पुनः पुनः । बभूव च ततस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षजैः ॥३॥
पर्शुनिःक्षेपणं कर्तुं मनश्चक्रे भृगुस्तदा । हाहा कृत्वा कार्तिकेयो बोधयामास संसदि ॥४॥
अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिपेः । गुरुवद्गुरुपुत्रं च मा भवान्हन्तुमर्हति ॥५॥

प्रकृति से परे, स्वेच्छामय, स्वतन्त्र और परमानन्दरूपधारी हैं। उनकी कला से समस्त देवगण उत्पन्न हुए हैं तथा महाविराट् उनका सोलहवाँ अंश है ॥६६-६७॥ उनसे स्थूल-सूक्ष्म आदि विश्व उत्पन्न होते हैं तथा पुनः उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, ऐसा बार-बार होता रहता है ॥६८॥ वैकुण्ठ से ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर गोलोक स्थित है, जिसके ऊपर कोई अन्य लोक नहीं है तथा भगवान् श्रीकृष्ण से महान् कोई अन्य प्रभु नहीं है ॥६९॥ हे द्विज! यह सब मैंने शम्भु के मुख से सुना था, जो तुम्हें बताया है। अतः हे भ्रातः! इस समय क्षणमात्र ठहरो। क्योंकि ईश्वर शिव सम्प्रति सुरतोन्मुख हैं ॥७०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद-प्रकरण में गणेश-परशुराम-संवाद-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

अध्याय ४३

गणेश का दन्त-भंग

नारायण बोले—गणेश की बातें सुनकर विद्वान् राम ने फरसा हाथ में लिए निर्भय होकर वेग से भीतर जाना चाहा ॥१॥ तब गणाधीश ने यह देखकर शीघ्र उठकर प्रयत्नपूर्वक सप्रेम राम को रोका तथा पुनः विनती की ॥२॥ किन्तु राम ने हुंकार करके उन्हें बार-बार ललकारा जिससे दोनों में वाग्युद्ध हुआ और हाथापाई होने लगी ॥३॥ उस समय भृगु ने उन पर फरसा चलाना चाहा, जिस पर सभा में हाहाकार करके कार्तिकेय ने कहा—हे भ्रातः! निष्फल न होने वाले इस अस्त्र को गुरुपुत्र के ऊपर क्यों चलाते हो? गुरु के समान ही गुरुपुत्र को आप मारने योग्य नहीं हैं ॥५॥ फरसा चलाते हुए राम को क्रुद्ध और रक्तकमल की

पशुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम्। गणेशो रोधयामास निवर्तस्वेत्युवाच तम् ॥६॥
पुनर्गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपतः। पपात पुरतो [1]वेगान्मानहीनो गजाननः ॥७॥
गजाननः समुत्थाय धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्। पुनस्तं बोधयामास जितक्रोधः शिवात्मजः ॥८॥
निवर्तस्व निवर्तस्वेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। प्रवेशने ते का शक्तिरीश्वराज्ञां विना प्रभो ॥९॥
मम भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासंबन्धतो ध्रुवम्। ईश्वरप्रियशिष्यश्च सोढं वै तेन हेतुना ॥१०॥
नह्यहं कार्तवीर्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः। [2]अतो विप्र न जानासि मां च विश्वेश्वरात्मजम् ॥११॥
क्षणं तिष्ठ निवर्तस्व समये ब्राह्मणातिथे। क्षणान्तरे त्वया सार्धं यास्यामीश्वरसंनिधिम् ॥१२॥

नारायण उवाच

हेरम्बवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनः पुनः। पशुं क्षेप्तुं मनश्चक्रे प्रणम्य हरिशंकरौ ॥१३॥
पशुं क्षिपन्तं कोपेन तं च रामं गजाननः। दृष्ट्वा मुमूर्षुं देवेशो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् ॥१४॥
[3]योगेन वर्धयामास शुण्डां तां कोटियोजनाम्। योगीन्द्रस्तत्र संतिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥१५॥
शतधा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्र वै। ऊर्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्राहिं गरुडो यथा ॥१६॥

भाँति लाल नेत्र किये देखकर गणेश ने उन्हें रोका और कहा—'लौट जाओ! किन्तु राम ने क्रुद्ध होकर पुनः गणेश को ललकारा, यह देखकर अपमानित गजानन वेग से दौड़कर उनके सम्मुख आ गये ॥६-७॥ गणेश ने उठ कर धर्म को साक्षी किया और क्रोधजयी शिवपुत्र ने उन्हें पुनः समझाया तथा बार-बार कहा—हे प्रभो! लौट जाओ, लौट जाओ। बिना ईश्वर (शिव) की आज्ञा के भीतर प्रविष्ट होने की तुम्हारी शक्ति नहीं है ॥८-९॥ तुम विद्या सम्बन्ध से मेरे भ्राता और अतिथि हो, ईश्वर के प्रिय शिष्य हो। इसीलिए मैं तुम्हारी सभी बातों का सहन कर रहा हूँ ॥१०॥ हे विप्र! न मैं कार्तवीर्य्य हूँ और न तुम्हारे (संग्राम वाले) क्षुद्रजन्तु राजा हूँ, इसी लिए तुम मुझ विश्वेश्वरपुत्र को नहीं जानते हो ॥११॥ हे ब्राह्मण अतिथि! क्षणमात्र ठहरो, लौट जाओ, मैं तुम्हारे साथ शिव के समीप क्षणभर में चलूँगा ॥१२॥

नारायण बोले—हेरम्ब (गणेश) की ऐसी बातें सुनकर भृगु ने बार-बार उनका उपहास किया, और हरि तथा शिव को प्रणाम करके फरसा चलाने का ही मन में निश्चय किया ॥१३॥ गजानन ने देखा कि परशुराम क्रुद्ध होकर मारने की इच्छा से फरसा चलाना ही चाहते हैं, अतः उस समय धर्म को साक्षी बनाकर उन्होंने योग द्वारा अपने शुण्डदण्ड (सूँड) को बढ़ाया, जो करोड़ योजन लम्बा हो गया योगीन्द्र गणेश ने वहीं खड़े होकर उसे बार-बार घुमाया ॥१४-१५॥ उससे परशुराम को सैकड़ों बार वेष्टित (लपेट) कर घुमाया। पश्चात् छोटे सर्प को गरुड़ की भाँति उसे वेग से ऊपर उठाकर योग द्वारा आहत राम को उन्होंने सातों द्वीप,

---

१ क. ०गाच्छन्नमानो। २ क. अये। ३ क. कोपेन।

सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च मेरुं चाखिलसागरान्। क्षणेन दर्शयामास रामं योगपराहतम्॥१७॥
हस्तपादाद्यनाथं तं जडं सर्वाङ्गकम्पितम्। पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः॥१८॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च सुरेश्वरः। जनोलोकं तपोलोकं दर्शयामास लीलया॥१९॥
पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम्। सत्यलोकं ब्रह्मलोकं ध्रुवलोकं च तत्परम्॥२०॥
गौरीलोकं शंभुलोकं दर्शयामास नारद। दर्शयित्वा तु विध्यण्डं स पपौ सप्तसागरान्॥२१॥
पुनरुद्गिरणं चक्रे सनक्रमकरोदकम्। तत्र तं पातयामास गम्भीरे सागरोदके॥२२॥
मुमूर्षुं तं संतरन्तं पुनर्जग्राह लीलया। पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमप्यमुम्॥२३॥
वैकुण्ठं दर्शयामास सलक्ष्मीकं जनार्दनम्॥२४॥
क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगीन्द्रो योगमायया। पुनः करं च योगेन वर्धयामास लीलया॥२५॥
गोलोकं दर्शयामास विरजां च नदीश्वरीम्। वृन्दावनं शृङ्गशतं शैलेन्द्रं रासमण्डलम्॥२६॥
गोपीगोपादिभिः सार्धं श्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम्॥२७॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। तेजसा कोटिसूर्याभं राधावक्षःस्थलस्थितम्॥२८॥
एवं कृष्णं दर्शयित्वा प्रणमय्य पुनः पुनः। क्षणेन लम्बमानं च भ्रामयित्वा पुनः पुनः॥२९॥

पर्वतगण, मेरु और समस्त सागर क्षणमात्र में दिखा दिये॥१६-१७॥ अनन्तर दर्पनाशन गणेश ने पुनः अभिमानी राम को, हाथ-चरण आदि से असहाय, जड़ तथा सर्वांग में कम्पित करके पुनः भ्रमण कराया॥१८॥ फिर सुरेश ने भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनोलोक तथा तपोलोक को लीलापूर्वक दिखा दिया। पुनः वहाँ घुमाकर ब्रह्माण्ड से ऊपर उत्तम सत्यलोक, ब्रह्मलोक, ध्रुवलोक, उससे परे गौरीलोक और शिवलोक का दर्शन कराया। फिर ब्रह्माण्ड दिखा कर सातों सागरों का पान कर लिया॥१९-२१॥ पुनः मगर आदि जलचर जीवों समेत समुद्र को बाहर उगल दिया और उसी गम्भीर सागर-जल में उन्हें गिरा दिया॥२२॥ वहाँ तैरते हुए मरणासन्न राम को लीलापूर्वक पकड़ कर पुनः घुमाकर ब्रह्माण्ड से भी ऊपर वैकुण्ठ लोक में लक्ष्मी समेत चतुर्भुजधारी भगवान् का उन्हें दर्शन कराया। ॥२३-२४॥ इस भाँति योगीन्द्र गणेश ने क्षणमात्र में पुनः योगमाया द्वारा उन्हें भ्रमण कराकर लीला पूर्वक अपने शुण्ड (सूँड) को बढ़ाया और उन्हें नदीश्वरी विरजा समेत गोलोक का दर्शन कराया। फिर वृन्दावन, सौ शिखरवाला पर्वतराज, रास-मण्डल एवं गोप-गोपी आदि समेत श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का दर्शन कराया, जो दो भुजा से युक्त, हाथ में मुरली लिये, मन्दहास समेत अति मनोहर, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान्, और राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान थे॥२५-२८॥ इस भाँति कृष्ण का दर्शन और उन्हें बार-बार प्रणाम कराकर पुनः सूँड को बढ़ाया। उसे बार-बार घुमाकर इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करा कर

दृष्ट्वा कृष्णं चेष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम् । भ्रूणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह ॥३०॥
न भवेद्यातना नष्टा विना भोगेन पापजा । स्वल्पां च बुभुजे रामो गताऽन्या कृष्णदर्शनात् ॥३१॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य भुवि वेगात्पपात ह । बभूव दूरीभूतं च गणेशस्तम्भनं भृगोः ॥३२॥
सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम् । अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शंभुं जगद्गुरुम् ॥३३॥
चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यं च तेजसा । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ॥३४॥
पितुरव्यर्थमस्त्रं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम् । जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह ॥३५॥
निपात्य पर्शुवेंगेन च्छित्वा दन्तं समूलकम् । जगाम रामहस्तं च महादेवबलेन च ॥३६॥
हाहेति शब्दमाकाशे देवाश्चक्रुर्महाभिया । वीरभद्रः[1] कार्तिकेयः क्षेत्रपालाश्च पार्षदाः ॥३७॥
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दयंस्तदा । पपात गैरिकायुक्तो यथा स्फटिकपर्वतः ॥३८॥
शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया । कैलासस्था जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं भिया ॥३९॥
निद्रा बभञ्ज तत्काले निद्रेशस्य जगत्प्रभोः । आजगाम बहिः शंभुः पार्वत्या सह संभ्रमात् ॥४०॥
पुरो ददर्श हेरम्बं लोहितास्यं क्षतेन तम् । भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने ॥४१॥

राम के भ्रूण हत्या आदि समस्त पापों को नष्ट कराया, क्योंकि भगवान् सभी पापों के विनाशक हैं ॥२९-३०॥ पापजन्य यातना बिना भोगे नष्ट नहीं होती है। राम ने कुछ का उपभोग किया था और शेष भगवान् कृष्ण के दर्शन से नष्ट हो गयी ॥३१॥ पुनः क्षणमात्र में चेतना प्राप्त होने पर वेग से भूतल पर राम आ गये और गणेश कृत स्तम्भन भी दूर हो गया ॥३२॥ तब परशुराम ने गुरु प्रदत्त अतिदुर्लभ कवच एवं स्तोत्र, अभीष्टदेव श्रीकृष्ण और जगद्गुरु गुरुदेव शिव का स्मरण किया ॥३३॥ हे मुने! तदुपरांत उस अव्यर्थ फरसे का प्रयोग कर दिया, जो शिव तुल्य एवं तेज में ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य की प्रभा से सौ गुना अधिक था ॥३४॥ गणपति ने अपने पिता के उस अमोघ अस्त्र को (राम द्वारा प्रयुक्त) देखकर स्वयं अपने बांयें दांत से उसे ग्रहण कर लिया, और उसे व्यर्थ नहीं किया ॥३५॥ वह फरसा वेग से गणपति का बायां दाँत समूल नष्ट कर महादेव के बल द्वारा पुनः राम के हाथ में पहुँच गया ॥३६॥ यह देखकर आकाश में देवगण तथा वीरभद्र, कार्तिकेय एवं पार्षद समेत क्षेत्रपाल लोग महाभय से हाहाकार करने लगे ॥३७॥ तब गेरू युक्त स्फटिक के पर्वत की भाँति वह रक्त युक्त दाँत शब्द करते हुए भूमि पर गिर पड़ा ॥३८॥ हे विप्र! उसके महान् शब्द से भयभीत हुई पृथिवी कांप उठी और कैलासनिवासी सभी लोग भय के मारे क्षण मात्र के लिए मूर्च्छित हो गये ॥३९॥ अनन्तर जगत्स्वामी और निद्रा के अधीश्वर शिव जी की भी निद्रा भंग हो गयी, पार्वती समेत सहसा वे बाहर आ गये ॥४०॥ हे मुने! उन्होंने सामने देखा कि प्रहार से गणेश का मुख रक्तपूर्ण है, दाँत टूट गया है, उन्होंने क्रोध को जीत लिया हैं फिर भी वे मुसकरा रहे हैं और लज्जित हैं ॥४१॥

१क. ०द्रश्च नन्दिश्च ।

पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक । स च तां कथयामास वार्तां पौर्वापरीं भिया ॥४२॥
चुकोप दुर्गा कृपया रुरोद च मुहुर्मुहुः । उवाच शंभोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥४३॥
संबोध्य शंभुं शोकेन भिया विनयपूर्वकम् । उवाच प्रणता साध्वी प्रणतार्तिहरं पतिम् ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशदन्तभङ्गकारणवर्णनं
नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

सर्वे जानन्ति जगति दुर्गां शंकरकिंकरीम् । अपेक्षारहिता दासी तस्या वै जीवनं वृथा ॥१॥
ईश्वरस्य समाः सर्वास्तृणपर्वतजातयः । दासीपुत्रस्य शिष्यस्य दोषः कस्येति च प्रभो ॥२॥
विचारं कर्तुमुचितं त्वं च धर्मविदां वरः । वीरभद्रः कार्तिकेयः पार्षदाः सन्ति साक्षिणः ॥३॥
साक्ष्ये मिथ्यां को वदेद्वा द्वावेषां भ्रातरौ समौ । साक्ष्ये समे शत्रुमित्रे सतां धर्मनिरूपणे ॥४॥
साक्षी सभायां यत्साक्ष्यं जानन्नप्यन्यथा वदेत् । कामतः क्रोधतो वाऽपि लोभेन च भयेन च ॥५॥
स याति कुम्भीपाकं च निपात्य शतपूरुषम् । तैश्च सार्धं वसेत्तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६॥

पार्वती ने शीघ्र स्कन्द से पूछा—हे पुत्र ! यह क्या हुआ ? उन्होंने भय से पूर्वापर सभी बातें कह कर उन्हें सुना दीं । उपरांत दुर्गा को क्रोध उत्पन्न हुआ; शिव के सम्मुख वे दयावश बार-बार रोदन करने लगीं और पुत्र को अपनी गोद में रखकर बोलीं ॥४२-४३॥ शोक और भय के कारण विनय पूर्वक शिव को सम्बोधित करके उस पतिव्रता ने नम्र होकर भक्तों के दुःखनाशक अपने पति से कहा ॥४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में गणेश-दन्तभंग का कारण वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अध्याय ४४

गणेश-स्तोत्र-कथन

पार्वती बोलीं—संसार में सभी लोग जानते हैं कि दुर्गा शंकर की दासी है, किन्तु (स्वामी के यहाँ) जिसकी आवश्यकता ही न हो उस दासी का जीवन व्यर्थ है ॥१॥ हे प्रभो ! ईश्वर (शिव) के यहाँ तृण से लेकर पर्वत तक सभी समान भाव से देखे जाते हैं । इसमें किस का दोष है ? मेरे पुत्र का या आपके शिष्य का ? ॥२॥ आप धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, अतः इसका विचार करना परमावश्यक है । वीरभद्र-कार्तिकेय और सभी पार्षदगण इसमें साक्षी भी हैं ॥३॥ ये दोनों (गणेश, कार्तिकेय) यद्यपि भ्राता हैं, पर साक्ष्य देने में मिथ्या कौन बोल सकता है, क्योंकि धर्म-निरूपण में साक्ष्य देते समय सज्जनों के लिए शत्रु-मित्र सब समान होते हैं ॥४॥ सभा में साक्षी यदि जानते हुए भी काम, क्रोध, लोभ या भय से मिथ्या कह दे तो वह अपनी सौ पीढ़ियों समेत कुम्भीपाक नरक में जाता है और वहाँ उन लोगों के साथ चन्द्र-सूर्य के समय तक निवास करता

अहं विबोधितुं शक्ता निर्णेत्री च द्वयोरपि । तथाऽपि तव साक्षात्तु ममाऽऽज्ञा निन्दिता श्रुतौ ॥७॥
किंकराणां प्रभा कुत्र नृपे वसति संसदि । उदिते भास्करे पृथ्व्यां खद्योतो हि यथा प्रभो ॥८॥
सुचिरं तपसा प्राप्तं त्वदीयं चरणाम्बुजम् । परित्यागभयेनैव संततं भीतया मया ॥९॥
यत्किंचित्कोपशोकाभ्यामुक्तं मोहेन तत्परम् । तत्क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रस्नेहाच्च दारुणात् ॥१०॥
त्वया यदि परित्यक्ता तदा पुत्रेण तेन किम् । साध्व्या सद्वंशजायाश्च शतपुत्राधिकः पतिः ॥११॥
असद्वंशप्रसूता या दुःशीला ज्ञानवर्जिता । स्वामिनं मन्यते नासौ पित्रोर्दोषेण कुत्सिता ॥१२॥
कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम् । कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम् ॥१३॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां वरः । पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हति षोडशीम् ॥१४॥
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च । तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१५॥
पुत्रो वाऽपि पिता वाऽपि बान्धवोऽथ सहोदरः । योषितां कुलजातानां न कश्चित्स्वामिनः समः ॥१६॥
इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गा ददर्श पुरतो भृगुम् । शंभोः पदाब्जं सेवन्तं निर्भयं तमुवाच ह ॥१७॥

पार्वत्युवाच

अये राम महाभाग ब्रह्मवंश्योऽसि पण्डितः । पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽस्य योगिनां गुरोः ॥१८॥

है ॥५-६॥ यद्यपि मैं दोनों का निर्णय करके बता देने में समर्थ हूँ, तथापि तुम्हारे रहते हुए यह मेरे लिये उचित नहीं है, क्योंकि ऐसे समय में मेरी आज्ञा वेद में निन्दित है ॥७॥ हे प्रभो ! सभा में राजा के वर्तमान रहते सेवकों का तेज वैसा ही होता है, जैसे सूर्य के उदित रहते पृथ्वी पर जुगनू का ॥८॥ मैंने अत्यन्त चिरकाल तक तप करके आपका चरण-कमल प्राप्त किया है, परित्यागभय के कारण ही मैं सदैव भयभीत रहती हूँ, अतः हे जगन्नाथ ! क्रोध, शोक एवं मोहवश और दारुण पुत्र-स्नेहवश जो कुछ मैंने कहा है, उसे क्षमा करें ॥९-१०॥ क्योंकि आपने यदि मेरा त्याग कर दिया, तो पुत्र लेकर ही मैं क्या करूंगी ? कुलीन पतिव्रताओं के लिए पति सौ पुत्रों से भी अधिक प्रिय होता है ॥११॥ जो अकुलीना, दुष्टा एवं अज्ञानी स्त्री होती है वह माता-पिता के दोष से निन्दित होने के कारण पति का सम्मान नहीं करती है ॥१२॥ निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी, तथा जड़ पति को भी कुलीनाएँ निरन्तर विष्णु के समान देखती हैं ॥१३॥ इसीलिए अग्नि या समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य भी पतिव्रता स्त्री के तेज की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं ॥१४॥ महादान, पुण्य, व्रत, उपवास और तप पतिसेवा की सोलहवीं कला के समान नहीं होते हैं ॥१५॥ पुत्र, पिता, बन्धु और सहोदर कोई भी कुलीन स्त्रियों के लिए पति के समान नहीं होता है ॥१६॥ स्वामी से इतना कहकर दुर्गा ने सामने भृगु को देखा, जो शिव के चरण-कमल की सेवा कर रहा था और निर्भय था। उससे वह बोलीं ॥१७॥

पार्वती बोलीं—हे महाभाग राम ! तुम ब्राह्मण वंश में उत्पन्न और पण्डित हो, जमदग्नि के पुत्र एवं योगियों के गुरु (शिव) के शिष्य हो ॥१८॥ तुम्हारी माता रेणुका थीं, जो पतिव्रता, कमला के अंश से उत्तम कुल

माता ते रेणुका साध्वी पद्मांशा सत्कुलोद्भवा । मातामहो वैष्णवश्च मातुलश्च ततोऽधिकः ॥१९॥
त्वं च रेणुकभूपस्य मनुवंशोद्भवस्य च । दौहित्रो मातुलः साधुः शूरो विष्णुपदाश्रयः ॥२०॥
कस्य दोषेण दुर्धर्षस्त्वं न जानेऽप्यशुद्धधीः । येषां दोषैर्जनो दुष्टस्तमृते शुद्धमानसः ॥२१॥
अमोघं प्राप्य पर्शुं च गुरोश्च करुणानिधेः । परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा बभूवास्य सुते पुनः ॥२२॥
गुरवे दक्षिणादानमुचितं च श्रुतौ श्रुतम् । भग्नो दन्तस्तत्सुतस्य च्छिन्धि मस्तकमप्यहो ॥२३॥
गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितश्चेदावयोः पुरः । स त्वं लब्ध्वाऽऽशिषो लोके पूजितोऽभूर्जगत्त्रये ॥२४॥
पर्शुनाऽमोघवीर्येण शंकरस्य वरेण च । हन्तुं शक्तः सृगालश्च सिंहं शार्दूलमाखुभुक् ॥२५॥
त्वद्विधं लक्षकोटिं च हन्तुं शक्तो गणेश्वरः । जितेन्द्रियाणां प्रवरो नहि हन्ति च मक्षिकाम् ॥२६॥
तेजसा कृष्णतुल्योऽयं कृष्णांशश्च गणेश्वरः । देवाश्चान्ये कृष्णकलाः पूजाऽस्य पुरतस्ततः ॥२७॥
व्रतप्रभावतः प्राप्तः शंकरस्य वरेण च । शोकेनातिकठोरेण नहि संपद्विनाऽऽपदम् ॥२८॥
इत्युक्त्वा पार्वती रोषात्तं रामं शप्तुमुद्यता । रामः सस्मार तं कृष्णं प्रणम्य मनसा गुरुम् ॥२९॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा ददर्श पुरतो द्विजम् । अतीव वामनं बालं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३०॥

में उत्पन्न हुई थीं। मातामह (नाना) वैष्णव और मातुल (मामा) तो उनसे भी बढ़ कर थे ॥१९॥ मनुवंश में उत्पन्न राजा रेणुक के तुम दौहित्र (कन्यापुत्र) हो। तुम्हारा मातुल (मामा) साधु, शूर और विष्णु के चरणों के आश्रय में सदैव रहता है ॥२०॥ मैं नहीं समझता कि तुम किसके दोष से दुर्द्धर्ष होते हुए भी अशुद्ध बुद्धि वाले हो गये। जिनके दोष से मनुष्य दुष्ट होता है उनके न रहने पर शुद्ध-चित्त होता है ॥२१॥ करुणानिधि गुरु से अमोघ फरसा प्राप्त करके तुमने पहले क्षत्रियों पर उसकी परीक्षा की और अब गुरु के पुत्र पर की है ॥२२॥ इस प्रकार गुरु के लिए दक्षिणा देना वेद में तुमने उचित ही सुना है। गुरु के पुत्र का अभी दाँत ही भग्न किया (तोड़ा) है अब उसका मस्तक भी काट डालो। ॥२३॥ गणेश्वर को रण में जीतकर तदि तुम हम लोगों के सामने स्थित हो तो तुम आशीर्वाद प्राप्त करके तीनों लोकों में पूजित हो गये ॥२४॥ (यह नहीं जानते कि)—शंकर का अमोघ अस्त्र फरसा और उनका वरदान प्राप्त कर स्यार सिंह को और चूहा बाघ को मारने में समर्थ हो जाता है ॥२५॥ तुम्हारे ऐसे लाखों करोड़ों को मारने में गणेश्वर समर्थ हैं, किन्तु जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ पुरुष मक्खी का हनन नहीं करता है ॥२६॥ गणनायक तेज में कृष्ण के समान और साक्षात् उनका अंश हैं, अन्य देवगण उनकी कला हैं, इसीलिए इनकी पूजा सबके पहले होती है ॥२७॥ व्रत के प्रभाव, शंकर के वरदान और अति कठोर शोक करने पर मैंने इन्हें प्राप्त की है, क्योंकि बिना दुःख के सुख सम्भव नहीं होता है ॥२८॥ इतना कहकर पार्वती रोष के कारण राम को शाप देने के लिए तैयार हो गयीं, यह देखकर राम मन ही मन गुरु को प्रणाम कर कृष्ण का स्मरण करने लगे ॥२९॥ इसी बीच दुर्गा ने अपने सामने एक बहुत ही बौने ब्राह्मण-बालक को देखा, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से पूर्ण था, शुक्ल दाँत, शुक्ल वस्त्र, शुक्ल यज्ञोपवीत, दण्ड, और छत्र धारण किये हुए था।

शुक्लदन्तं शुक्लवस्त्रं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् । दण्डिनं छत्रिणं चैव सुप्रभं तिलकोज्ज्वलम् ॥३१॥
दधतं तुलसीमालां सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नकेयूरवलयं रत्नमालाविभूषितम् ॥३२॥
रत्ननूपुरपादं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम् ॥३३॥
स्थिरमुद्रां दर्शयन्तं भक्तं वामकरेण च । दक्षिणेऽभयमुद्रां च भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥३४॥
बालिकाबालकगणैर्नगरैः सस्मितैर्युतम् । कैलासवासिभिः सर्वैरावृद्धैरीक्षितं मुदा ॥३५॥
तं दृष्ट्वा संभ्रमाच्छंभुः सभृत्यः सहपुत्रकः । मूर्ध्ना भक्त्या प्रणमच्च दुर्गा च दण्डवद्भुवि ॥३६॥
आशिषं प्रददौ बालः सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदाम् । तं दृष्ट्वा बालकाः सर्वे महाश्चर्यं ययुर्भिया ॥३७॥
दत्त्वा तस्मै शिवो भक्त्या तूपचारांस्तु षोडश । पूजां चकार श्रुत्युक्तां परिपूर्णतमस्य च ॥३८॥
तुष्टाव काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण नतकंधरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भगवन्तं सनातनम् ॥३९॥
रत्नसिंहासनस्थं च प्रावोचच्छंकरः स्वयम् । अतीव तेजसाऽत्यन्तं प्रच्छन्नाकृतिमेव च ॥४०॥

शंकर उवाच

आत्मारामेषु कुशलप्रश्नोऽतीव विडम्बनम् । ते शश्वत्कुशलाधाराः कुशलाः [1]कुशलप्रदाः ॥४१॥

वह प्रभापूर्ण उज्ज्वल तिलक और तुलसी की माला पहने, मन्दहास समेत, अति मनोहर था। वह रत्नों के केयूर, कंकण और रत्नों की माला से भूषित था, रत्नों के नूपुर से सुशोभित उसके चरण थे और वह उत्तम रत्न के मुकुट से समुज्ज्वल तथा रत्नों के युगल कुण्डलों से युक्त गण्डस्थल से शोभित था ॥३०-३३॥ भक्त को बायें हाथ से स्थिर होने की मुद्रा और दाहिने से अभय मुद्रा दिखाते हुए, भक्तों के ईश एवं भक्तवत्सल था ॥३४॥ मन्दहास करते हुए नगर के बालक-बालिकागण उसे चारों ओर से घेरे हुए थे और कैलाशवासी सभी युवा-वृद्ध प्रसन्नता से उसे देख रहे थे ॥३५॥ शम्भु ने उसे देखकर सहसा सेवक और पुत्रों समेत भक्तिपूर्वक शिर से प्रणाम किया तथा दुर्गा ने भूमि पर दण्डवत् किया ॥३६॥ अनन्तर उस बालक ने सबको अभीष्ट सिद्ध होने का आशीर्वाद दिया। नगर के सभी बालक उस आश्चर्य को देखकर भय से चले गये ॥३७॥ उपरान्त शिव ने भक्तिपूर्वक उस परिपूर्णतम बालक भगवान् की सोलहों उपचार से वेदोक्त अर्चना की तथा सर्वांग में पुलकायमान हो कन्धे झुकाकर काण्व शाखा के अनुसार स्तोत्र से सनातन भगवान् की स्तुति की ॥३८-३९॥ पश्चात् स्वयं शिव ने रत्नसिंहासन पर स्थित तथा अत्यन्त तेज के कारण आकार को आच्छन्न किये उस बालक से कहा ॥४०॥

शंकर बोले—आत्मा में रमण करने वालों के लिए कुशल प्रश्न करना अत्यन्त विडम्बना ही है, क्योंकि वे निरन्तर कुशल के आधार, कुशलस्वरूप और कुशलप्रदायक होते हैं ॥४१॥ हे ब्राह्मण! आज मेरा जन्म

१क. ०शलात्मिकाः ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । प्राप्तस्त्वमतिथिर्ब्रह्मन्कृष्णसेवाफलोदयात् ॥४२॥
परिपूर्णतमः कृष्णो लोकनिस्तारहेतवे । पुण्यक्षेत्रे हि कलया भारते च कृपानिधिः ॥४३॥
अतिथिः पूजितो येन पूजिताः सर्वदेवताः । अतिथिर्यस्य संतुष्टस्तस्य तुष्टो हरः स्वयम् ॥४४॥
स्नानेन सर्वतीर्थेषु सर्वदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासेन सर्वयज्ञेषु दीक्षया ॥४५॥
सर्वैस्तपोभिर्विविधैर्नित्यनैमित्तिकादिभिः । तदेवातिथिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥४६॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात् । कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥४७॥
स्त्रीगोघ्नश्च कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । पितृमातृगुरूणां च निन्दको नरघातकः ॥४८॥
संध्याहीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दकः । ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ॥४९॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत् । शवदाही ग्रामयाजी ब्राह्मणो वृषलीपतिः ॥५०॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्रश्राद्धेषु भोजकः । कन्याविक्रयकारी च श्रीहरेर्नामविक्रयी ॥५१॥
[1]लाक्षामांसतिलानां च लवणस्य तिलस्य च । विक्रेता ब्राह्मणश्चैव तुरगाणां गवां तथा ॥५२॥
एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते । एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः ॥५३॥
कालसूत्रे च नरके पतन्ति ब्रह्मणां शतम् । एतेभ्योऽप्यधमः सोऽपि यश्चातिथिपराङ्मुखः ॥५४॥

सफल हो गया, जीवन उत्तम हो गया, क्योंकि भगवान् कृष्ण की सेवा का फलोदय होने से तुम हमें अतिथिरूप में प्राप्त हुए हो ॥४२॥ परिपूर्णतम एवं कृपानिधान भगवान् कृष्ण लोक के निस्तार के लिए पुण्य क्षेत्र भारत में अपनी कला द्वारा अवतीर्ण होते रहते हैं ॥४३॥ जो अतिथि की पूजा करता है उससे सभी देवता पूजित हो जाते हैं। अतिथि के प्रसन्न होने पर स्वयं भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥४४॥ समस्त तीर्थों में स्नान, समस्त दान, समस्त व्रत के उपवास, सम्पूर्ण यज्ञों की दीक्षा तथा विविध भाँति के नित्य नैमित्तिक आदि सभी तप के फल अतिथि-सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होते हैं ॥४५-४६॥ अतिथि जिसके घर से निराश एवं रुष्ट होकर चला जाता है, उसका करोड़ों जन्म का संचित पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता है ॥४७॥ स्त्री और गौ का घाती, कृतघ्न, ब्रह्म-घाती, गुरुस्त्रीगामी, पिता, माता और गुरु का निन्दक, नरहन्ता, संध्याकर्महीन, आत्महन्ता, सत्य का घाती, हरिनिन्दक, ब्राह्मण-धन का अपहर्ता, मिथ्यासाक्ष्य (झूठी गवाही) देने वाला, मित्रद्रोही, कृतघ्न, बैलों पर लादने वाला, भण्डारी, शव-दाह का कर्म करने वाला, गांवों को पुजाने वाला, वृषली (शूद्र स्त्री) का पति ब्राह्मण, शूद्रों का श्राद्धान्न भोजन करने वाला, शूद्रों के श्राद्ध में खिलाने वाला, कन्याविक्रेता, भगवान् का नाम विक्रेता, लाक्षा (लाह), मांस, तिल, नमक, घोड़े और गौओं का विक्रेता ब्राह्मण तथा भारत में एकादशी व्रत और भगवान् कृष्ण की सेवा से हीन ब्राह्मण, ये तीनों लोकों में 'महापातकी' कहे जाते हैं और अतिनिन्दित हैं ॥४८-५३॥ ये सब कालसूत्र नरक में सौ ब्रह्मा के समय तक पड़े रहते हैं तथा इनसे भी बढ़कर वह है जो अतिथि को निराश लौटा देता है ॥५४॥

१क ०क्षालोहरसानां च ।

नारायण उवाच

शंकरस्य वचः श्रुत्वा संतुष्टः श्रीहरिः स्वयम् । मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच जगत्पतिः ॥५५॥

विष्णुरुवाच

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलं च वः । अस्य रामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्य सांप्रतम् ॥५६॥
नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । रक्षामि तांश्चक्रहस्तो गुरुमन्यं विना शिव ॥५७॥
नाहं पाता गुरौ रुष्टे बलवद्गुरुहेलनम् । तत्परः पातकी नास्ति सेवाहीनो गुरोश्च यः ॥५८॥
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत् । अहो यस्य प्रसादेन सर्वान्पश्यति मानवः ॥५९॥
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम् । ततो विस्तारकरणात्कलया स प्रजापतिः ॥६०॥
पितुः शतगुणं माता पोषणाद्गर्भधारणात् । वन्द्या पूज्या च मान्या च [1]प्रसूः स्याद्वै वसुंधरा ॥६१॥
मातुः शतगुणं वन्द्यः पूज्यो मान्योऽन्नदायकः । यद्विना नश्वरो देहो विष्णुश्च कलयाऽन्नदः ॥६२॥
अन्नदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः । गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायकः ॥६३॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा । यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परो नैव बान्धवः ॥६४॥

नारायण बोले—शंकर की बातें सुनकर स्वयं श्रीभगवान् प्रसन्न हुए और पश्चात् जगत्पति ने मेघ की भाँति गंभीर वाणी द्वारा उनसे कहना प्रारम्भ किया ॥५५॥

विष्णु बोले—मैं तुम लोगों का कोलाहल (शोरगुल) सुनकर इस कृष्णभक्त राम के रक्षणार्थ इस समय श्वेत द्वीप से आ रहा हूँ ॥५६॥ हे शिव ! इन कृष्ण-भक्तों का कहीं भी अमंगल नहीं होता है। मैं हाथ में चक्र लेकर उनकी रक्षा करता हूँ। केवल अपने को ही गुरु मान लेने वाले (गुरुद्रोही) की छोड़कर ॥५७॥ क्योंकि गुरु के रुष्ट होने पर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सकता हूँ। गुरु-अनादर बलवान् होता है। गुरुसेवा से हीन प्राणी से बढ़कर कोई अन्य पातकी नहीं है ॥५८॥ अहो ! जिसकी कृपा से मानव सभी को देखता है, वह सब का पूज्य माननीय और सबका जनक हो सकता है ॥५९॥ वही मनुष्यों का जन्म देने से जनक, पालन करने से पिता और कला द्वारा विस्तार करने से प्रजापति कहलाता है ॥६०॥ पोषण और गर्भ में धारण करने के नाते माता, पिता से सौगुने अधिक वन्दनीय, पूजनीय और मान्य है; इतना ही नहीं, जननी वसुन्धरा रूप है ॥६१॥ अन्नदाता, माता से सौ गुना वन्दनीय, पूज्य और मान्य होता है, क्योंकि उसके बिना यह देह नष्ट हो जाती है। विष्णु कला रूप से अन्न-दाता होते हैं ॥६२॥ अन्नदाता से सौ गुने अधिक इष्टदेव होता है तथा उससे सौ गुने अधिक गुरु होता है, जो विद्या और मन्त्र प्रदान करता है ॥६३॥ गुरु अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न प्राणी को अपने ज्ञानदीपक नेत्र से सभी वस्तुओं का दर्शन कराता है, अतः उससे बढ़कर कोई अन्य बन्धु नहीं है ॥६४॥ गुरुप्रदत्त मन्त्र द्वारा तप करके

१क. प्रसूरूपा व०

गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत्। सर्वज्ञत्वं सर्वसिद्धिं तत्परो नैव बान्धवः ॥६५॥
सर्वं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया। तस्मात्पूज्यो हि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥६६॥
विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न भजेद्गुरुम्। ब्रह्महत्यादिभिः पापैः स लिप्तो नात्र संशयः ॥६७॥
दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्याऽऽचरेद्गुरुम्। तीर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु ॥६८॥
पितरं मातरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरुं परम्। यो न पुष्णाति कापट्यात्स महापातकी शिव ॥६९॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुर्भास्करसन्निभः ॥७०॥
गुरुश्चन्द्रस्तथेन्द्रश्च वायुश्च वरुणोऽनलः। सर्वरूपो हि भगवान्परमात्मा स्वयं गुरुः ॥७१॥
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नहि कृष्णात्परः सुरः। नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीदलात् ॥७२॥
नास्ति क्षमावती भूमेः पुत्रान्नास्त्यपरः प्रियः। न च दैवात्परा शक्तिर्नैकादश्याः परं व्रतम् ॥७३॥
शालग्रामात्परो यन्त्रो न क्षेत्रं भारतात्परम्। परं पुण्यस्थलानां च पुण्यं वृन्दावनं यथा ॥७४॥
मोक्षदानां यथा काशी वैष्णवानां यथा शिवः। न पार्वत्याः परा साध्वी न गणेशात्परो वशी ॥७५॥
न च विद्यासमो बन्धुर्नास्ति कश्चिद्गुरोः परः। विद्यादातुः पुत्रदारौ तत्समौ नात्र संशयः ॥७६॥
गुरुस्त्रियां च पुत्रे चाप्यभवद्रामहेलनम्। परं संमार्जनं कर्तुमागतोऽहं तवाऽऽलयम् ॥७७॥

मनुष्य अभीष्ट सुख, सर्वज्ञत्व और समस्त सिद्धि प्राप्त कर सकता है, अतः उससे बढ़कर अन्य कोई बन्धु नहीं होता है। ॥६५॥ मनुष्य गुरु की दी हुई विद्या द्वारा सर्वत्र सब पर विजय प्राप्त करता है, अतः संसार में उससे अधिक पूज्य और बन्धु कौन हो सकता है? ॥६६॥ इसीलिए विद्या या धन से अन्धा होकर जो मूर्ख गुरु-सेवा नहीं करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापों का भागी होता है, इसमें संशय नहीं ॥६७॥ इस प्रकार दरिद्र, पतित और क्षुद्र गुरु के प्रति भी जो मनुष्य-बुद्धि से आचरण करता है, वह तीर्थों में स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं होता है और न कर्मों का अधिकारी ही होता है ॥६८॥ हे शिव! पिता, माता, स्त्री, गुरुपत्नी और परम गुरु का जो कपट के कारण पोषण नहीं करता है, वह महापातकी है। गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु भगवान् शंकर है, गुरु ही परब्रह्म है और गुरु सूर्यरूप है। गुरु ही चन्द्र, इन्द्र, वायु, वरुण तथा अग्नि है। गुरु ही स्वयं सर्वरूप भगवान् परमात्मा है। ॥६९–७१॥ वेद से बढ़कर कोई शास्त्र और कृष्ण से बढ़कर कोई देवता नहीं है। गंगा के समान तीर्थ, तुलसी दल से बढ़कर अन्य पुष्प, पृथिवी से बढ़कर क्षमाशील और पुत्र से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। दैव से बढ़कर शक्ति, एकादशी से बढ़कर व्रत, शालग्राम से बढ़कर यंत्र, भारत से बढ़कर क्षेत्र एवं पुण्यस्थलों में वृन्दावन से अधिक पवित्र कोई नहीं है ॥७२-७४॥ मोक्षदायकों में काशी और वैष्णवों में शिव से बढ़कर कोई नहीं है। पार्वती से बढ़कर पतिव्रता और गणेश से बढ़कर आत्मसंयमी कोई नहीं है ॥७५॥ विद्या के समान बन्धु और गुरु से बढ़कर कोई दूसरा हितैषी नहीं है। विद्या देने वाले की पत्नी और पुत्र भी उन्हीं के समान हैं, इसमें संशय नहीं ॥७६॥ गुरुपत्नी और उनके पुत्र का राम ने अपमान किया है, उसी का क्षालन करने के लिए मैं तुम्हारे घर आया हूँ ॥७७॥

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा शंभुं च दुर्गां संबोध्य नारद। उवाच भगवांस्तत्र सत्यसारं परं वचः ॥७८॥

विष्णुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीयं वचनं शुभम्। नीतियुक्तं वेदसारं परिणामसुखावहम् ॥७९॥
यथा ते गजवक्त्रश्च कार्तिकेयश्च पार्वति। तथा परशुरामश्च भार्गवो नात्र संशयः ॥८०॥
नास्त्येषु स्नेहभेदश्च तव वा शंकरस्य च। विचार्य सर्वं सर्वज्ञे कुरु मातर्यथोचितम् ॥८१॥
पुत्रेण सार्धं पुत्रस्य विवादो दैवदोषतः। दैवं हन्तुं को हि शक्तो दैवं च बलवत्तरम् ॥८२॥
पुत्राभिधानं वेदेषु[1] पश्य वत्से वरानने। एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥८३॥
पुत्रनामाष्टकं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीश्वरि। शृणुष्वावहितं मातः[2] सर्वविघ्नहरं परम् ॥८४॥

विष्णुरुवाच

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम् ॥८५॥
अष्टाख्यार्थं च पुत्रस्य शृणु मातर्हरिप्रिये। स्तोत्राणां सारभूतं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥८६॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥८७॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम् ॥८८॥

नारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार कह कर शिव और दुर्गा को सम्बोधित करके भगवान् ने सत्य का सार एवं श्रेष्ठ वचन कहा ॥७८॥

विष्णु बोले—हे देवि! मैं तुमसे कुछ शुभ वचन कह रहा हूँ, जो नीतियुक्त, वेद का सार भाग और परिणाम में सुखप्रद होगा, सुनो ॥७९॥ हे पार्वती! जिस प्रकार तुम्हारे पुत्र गजानन और कार्तिकेय हैं उसी भाँति भार्गव परशुराम भी हैं, इसमें संशय नहीं ॥८०॥ हे सर्वज्ञे, हे मातः! तुम्हारा और शिव का इसमें स्नेह-भेद भी नहीं है, अतः विचार करके जो उचित हो, करो ॥८१॥ पुत्र के साथ पुत्र का विवाद हो गया, तो यह दैव का दोष है। दैव को हटाने में कौन समर्थ है? वह सबसे बलवान् होता है ॥८२॥ हे वत्से! हे वरानने! वेदों में पुत्र का नाम देखो—'एकदन्त' यही विख्यात है जो सब देवों से नमस्कृत है ॥८३॥ अतः हे ईश्वरि! हे मातः! सामवेदानुसार पुत्र का नामाष्टक स्तोत्र, जो समस्त विघ्नों का परम नाशक है, सावधानी से सुनो ॥८४॥

विष्णु बोले—गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण (सूप के समान कान वाले), गजानन, गुहाग्रज (स्कन्द के ज्येष्ठ भ्राता), यही आठ नाम हैं ॥८५॥ हे हरिप्रिये! मातः! पुत्र के इन आठों नामों के अर्थ सुनो, जो स्तोत्रों का सारभाग और समस्त विघ्नों का परम नाशक है ॥८६॥ ग का अर्थ ज्ञान, ण का अर्थ (मुक्ति), इन दोनों के अधीश्वर परब्रह्म गणेश को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥८७॥ एक का अर्थ प्रधान, दन्त का अर्थ बल है, अतः सबसे प्रधान बली एकदन्त को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥८८॥ हे का अर्थ दीन और रम्ब का अर्थ पालन करना है,

---

१ क. देवेषु। २ क. मत्तः।

दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः। पालकं दीनलोकानां हेरम्बं प्रण० ॥८९॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः। विपत्खण्डनकारं तं प्रणमे विघ्ननायकम् ॥९०॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बं पुरोदरम्। पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम् ॥९१॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारकौ। संपद्दौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम् ॥९२॥
विष्णुप्रसादं मुनिना दत्तं यन्मूर्धनि पुष्पकम्। तद्गजेन्द्रमुखं कान्तं गजवक्त्रं न० ॥९३॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये। वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम् ॥९४॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नानाशक्तियुतं परम्। एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसहितं[1] शुभम् ॥९५॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी। ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद्यथोरगाः ॥९६॥
गणेशवरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद्ध्रुवम्। पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी कुशलां स्त्रियम् ॥९७॥
महामूढः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद्ध्रुवम्। पुत्र त्वं पश्य वेदे च तथा कोपं च नो कुरु ॥९८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशस्तोत्रकथनं नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अतः दीनों और लोकों के पालनकर्ता हेरम्ब को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥८९॥ विघ्न का अर्थ है विपत्ति और नायक का अर्थ है खण्डन करना, अतः विपत्ति के खण्डन करने वाले विघ्ननायक को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥९०॥ भगवान् विष्णु के दिये हुए नैवेद्य खाने से तथा पिता द्वारा भी विविध भाँति के नैवेद्य देने से जिसका उदर लम्बा हो गया है, उस लम्बोदर की मैं वन्दना कर रहा हूँ ॥९१॥ विघ्नों को दूर भगाने के लिए जिसके दोनों कान सूप की भाँति बड़े हैं, सम्पत्तिदायक हैं तथा ज्ञानस्वरूप हैं, उन शूर्पकर्ण को नमस्कार कर रहा हूँ ॥९२॥ मुनिप्रदत्त विष्णु का प्रसाद पुष्प जिसके मस्तक पर था, उस मनोहर गजेन्द्र मुखवाले गजानन को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥९३॥शिव के घर स्कन्द से प्रथम यह प्रकट हुए हैं, अतः समस्त बड़े देवों से पूजित गुहाग्रज देव की मैं वन्दना कर रहा हूँ ॥९४॥ हे दुर्गे ! इस प्रकार यह अष्टक अनेक शक्तियों और अनेक अर्थों से युक्त एवं शुभ स्तोत्र है ॥९५॥ जो तीनों कालों में इसका नित्य पाठ करता है, वह सुखी और सबसे विजयी होता है तथा गरुड़ से साँप की भाँति उससे सभी विघ्न पलायन कर जाते हैं ॥९६॥ गणेश्वर के प्रसाद से वह निश्चित रूप से महाज्ञानी होता है। पुत्रार्थी पुत्र और भार्या चाहने वाला कुशल स्त्री प्राप्त करता है ॥९७॥ महामूर्ख कवीन्द्र और विद्यावान् होता है। अतः हे पुत्र ! तुम वेद में देखो, कोप न करो ॥९८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणेश-स्तोत्र-कथन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

---

१ क. नामार्थस० ।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पार्वतीं बोधयित्वा तु विष्णू राममुवाच ह। हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥१॥

विष्णुरुवाच

राम त्वमधुना सत्यमपराधी श्रुतेर्मते। कोपात्कृत्वा दन्तभङ्गं गणेशस्य स्थिते[1] शिवे ॥२॥
स्तोत्रेणैव मयोक्तेन स्तुत्वा गणपतिं परम्। काण्वशाखोक्तविधिना स्तुहि दुर्गां जगत्प्रसूम् ॥३॥
श्रीकृष्णस्य परा शक्तिर्बुद्धिरूपा जगत्प्रभोः। अस्यां च तव रुष्टायां हता बुद्धिर्भविष्यति ॥४॥
सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जगत्। अनया शक्तिमान्कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥५॥
सृष्टिं कर्तुं न शक्तश्च ब्रह्मा शक्त्याऽनया विना। वयमस्यां प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६॥
सुरसंघेऽसुरग्रस्ते काले घोरतरे द्विज। तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा[2] सती ॥७॥
कृष्णाज्ञयाऽसुरान्हत्वा दत्त्वा तेभ्यः पदं ततः। दक्षपत्न्यां जनिं लेभे दक्षस्य तपसा पुरा ॥८॥

अध्याय ४५

परशुरामकृत दुर्गास्तोत्र

नारायण बोले—इस प्रकार पार्वती को समझाकर विष्णु ने राम से हितकर, सत्य, नीति का सार और परिणाम में सुखप्रद वचन कहा ॥१॥

विष्णु बोले—हे राम! तुम इस समय वेदानुसार सत्य अपराधी हो, क्योंकि शिव के रहते तुमने कोप से गणेश का दाँत तोड़ दिया है ॥२॥ अतः मेरे कहे हुए स्तोत्र द्वारा ही श्रेष्ठ गणपति की स्तुति करके तुम काण्वशाखानुसार जगज्जननी दुर्गा की स्तुति करो ॥३॥ क्योंकि जगत्स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की यह बुद्धिरूप पराशक्ति है, अतः इसके रुष्ट होने पर तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जायगी ॥४॥ यह सम्पूर्ण शक्तिरूप है और सारा जगत् इसी के द्वारा शक्तिमान् हुआ है। निर्गुण एवं प्रकृति से परे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण भी इसी से शक्तिमान् हैं ॥५॥ इस शक्ति के बिना ब्रह्मा भी सृष्टि करने में असमर्थ रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदि हम लोग इन्हीं से उत्पन्न हुए हैं ॥६॥ हे द्विज! देवगणों के असुरों के अधीन हो जाने पर उस अति घोर काल में समस्त देवों के तेज से यह सती पहले उत्पन्न हुई थी ॥७॥ भगवान् कृष्ण की आज्ञा से राक्षसों का वध करके इसने देवों को उनका अपना पद (अधिकार) प्रदान किया तथा दक्ष की तपस्या के कारण उनकी पत्नी में जन्म ग्रहण किया ॥८॥ और शंकर की पत्नी होने पर पुनः पति-निन्दा के कारण उस

---

१ ख. स्थितोऽशि०। २ क. सनातनी।

भार्या भूत्वा शंकरस्य पुनः पत्युश्च निन्दया । देहं त्यक्त्वा शैलपत्न्यां जनिं लेभे पुरा सती ॥९॥
शंकरस्तपसा लब्धो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । लब्धो गणपतिः पुत्रः कृष्णांशः कृष्णसेवया ॥१०॥
यं ध्यायस्येव नित्यं किं तं न जानासि बालक । स एव भगवान्कृष्णश्चांशेन गिरिजासुतः ॥११॥
कृताञ्जलिर्नतो भूत्वा स्तुहि दुर्गां शिवप्रियाम् । शिवां शिवप्रदां शैवां शिवबीजां शिवेश्वरीम् ॥१२॥
शिवायाः स्तोत्रराजेन पुरा शूलिकृतेन वै । त्रिपुरस्य वधे घोरे ब्रह्मणा प्रेरितेन च ॥१३॥
इत्युक्त्वा श्रीपदं शीघ्रं जगाम श्रीनिकेतनम् । गते हरौ हरिं स्मृत्वा रामस्तां स्तोतुमुद्यतः ॥१४॥
स्तोत्रेण विष्णुदत्तेन सर्वविघ्नहरेण च । धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे । गुरुं प्रणम्य भक्तेशं धृत्वा धौते च वाससी ॥१६॥
आचम्य नत्वा मूर्ध्ना तां भक्तिनम्रात्मकंधरः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गश्चानन्दाश्रुसमन्वितः ॥१७॥

परशुराम उवाच

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च । आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्टचुन्मुखस्य च ॥१८॥
सूर्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालंकारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा ॥१९॥

(दक्ष-जनित) देह का त्याग कर दिया तथा हिमालय की पत्नी में जन्म लिया ॥९॥ अनन्तर तप करके योगीन्द्रों के गुरु के गुरु शंकर को पति रूप में पुनः प्राप्त किया और भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करके गणपति पुत्र प्राप्त किया है, जो कृष्ण का अंश है ॥१०॥ हे बालक ! जिसका नित्य ध्यान करते हो, क्या उसे नहीं जानते ? वही भगवान् कृष्ण अंशतः गिरिजा के पुत्र हुए हैं ॥११॥ इसलिए हाथ जोड़कर विनम्र हो शिवप्रिया दुर्गा की स्तुति करो, जो शिवा (कल्याणरूपा), शिवप्रदा, शिव-भक्त, शिवबीज स्वरूप तथा शिव की ईश्वरी है ॥१२॥ पहले के शंकर कृत स्तोत्रराज से तुम शिवा की स्तुति करो, जिसे उन्होंने त्रिपुर के घोर वध के समय ब्रह्मा से प्रेरित होकर उन्होंने रचा था ॥१३॥ हे नारद ! इतना कह कर वह (वामन बालक) शीघ्रता से विष्णुलोक चला गया। भगवान् के चले जाने पर भगवान् का स्मरण करके राम पार्वती की उस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने के लिए तैयार हो गये, जो विष्णुप्रदत्त, समस्तविघ्नहारी और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का कारण था ॥१४-१५॥ शुभ गंगाजल में स्नान करके हाथ जोड़कर, भक्तों के ईश गुरु को प्रणाम करके दो धुले वस्त्रों को पहना और आचमन करके भक्ति से कन्धे झुकाये, सर्वांग में पुलक (रोमाञ्च) एवं नेत्रों में आनन्द के आंसू भरे तथा शिर से नमस्कार करते हुए राम ने देवी की स्तुति की ॥१६-१७॥

परशुराम बोले—पूर्व समय गोलोक में परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की देह से, जब वे सृष्टि के उन्मुख हो रहे थे, तुम प्रकट हुई ॥१८॥ तुम करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त, वस्त्र-आभूषणों से विभूषित, अग्नि की भाँति

नवयौवनसंपन्ना [1]सिन्दूरारुण्यशोभिता । ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥२०॥
अहोऽनिर्वचनीया त्वं चारुमूर्तिं च बिभ्रती । मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महाविष्णुर्विधिः स्वयम् ॥२१॥
मुमोह क्षणमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम् । [2]बालैः संभूय सहसा सस्मिता धाविता[3] पुरा ॥२२॥
सद्भिः ख्याता तेन राधा मूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णस्तां सहसा[4] भीतो वीर्याधानं चकार ह ॥२३॥
ततो डिम्भं महज्जज्ञे ततो जातो महान्विराट् । यस्यैव लोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च॥२४॥
राधारतिक्रमेणैव तन्निःश्वासो बभूव ह । स निःश्वासो महावायुः स विराड्विश्वधारकः ॥२५॥
भयघर्मजलेनैव पुप्लुवे विश्वगोलकम् । स विराड्विश्वनिलयो जलराशिर्बभूव ह ॥२६॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्च मूर्तीश्च बिभ्रती । प्राणाधिष्ठातृमूर्तिर्या कृष्णस्य परमात्मनः ॥२७॥
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः । वेदाधिष्ठातृमूर्तिर्या वेदशास्त्रप्रसूरपि ॥२८॥
तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः । ऐश्वर्याधिष्ठातृमूर्तिः शान्तिस्त्वं शान्तरूपिणी ॥२९॥
लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम् । रागाधिष्ठातृदेवी या शुक्लमूर्तिः सतां प्रसूः ॥३०॥
सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो । बुद्धिर्विद्या सर्वशक्तेर्या मूर्तिरधिदेवता ॥३१॥
सर्वमङ्गलदा सन्तो वदन्ति सर्वमङ्गलाम् । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३२॥

विशुद्ध वस्त्र पहने, मन्दहास करती हुई, अति मनोहर, नवयौवना, सिन्दूर की लाली से सुशोभित, मालती-माला से विभूषित और ललित कवरी भार (केशपाश) धारण किये हुई थीं ॥१९-२०॥ अहो ! सुन्दर मूर्ति धारण करने वाली तुम अनिर्वचनीया, एवं मुमुक्षजनों को मोक्ष देने वाली हो और तुम्हारा सर्वमोहन रूप देखकर स्वयं महाविष्णु और ब्रह्मा क्षणमात्र में मोहित हो गये थे। तुम सहसा बच्चों के साथ मन्दहास करते दौड़ने लगी थीं, इसीलिए सज्जनों ने तुम मूलप्रकृति ईश्वरी को 'राधा' नाम से प्रख्यात किया। कृष्ण ने भी सहसा भयभीत होकर तुम में बीर्याधान किया ॥२१-२३॥ जिससे महान् डिम्भ (सुवर्ण का अंडा) उत्पन्न हुआ, और उससे महाविराट् का जन्म हुआ है जिसके लोमकूपों में निखिल ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं ॥२४॥ राधा के साथ रति करते समय क्रमशः जो उनका निःश्वास उत्पन्न हुआ, वह निःश्वास महावायु एवं विश्व का आधार विराट् हुआ ॥२५॥ उस समय उनके पसीने के जल से गोलाकार विश्व उत्पन्न हुआ। वह विश्व-धारक विराट् जलराशि हो गया ॥२६॥ अनन्तर तुमने अपने को पाँच रूपों में प्रकट किया। जो परमात्मा कृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री मूर्ति है वह उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय है, अतः पुरावेत्ता लोग उसे राधा कहते हैं। वेदों की अधिष्ठात्री देवी, जो वेद शास्त्रों की जननी भी है, उसे मनीषी गण शुद्धरूपा सावित्री कहते हैं। ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री मूर्ति तुम शान्ति एवं शान्त रूपा हो, अतः उस शुद्ध सत्त्वस्वरूपा को सन्त लोग लक्ष्मी कहते हैं। रागों की अधिष्ठात्री देवी, जो शुक्लरूप एवं सज्जनों की जननी है, उस शास्त्रज्ञा को शास्त्रज्ञ लोग सरस्वती कहते हैं। बुद्धि और विद्यारूप, समस्त शक्ति की अधिदेवता, तथा समस्त मंगलों को देने वाली जो मूर्ति है उसे सन्त लोग सर्वमंगला कहते हैं। तुम समस्त मंगलों की मंगलकारिका तथा सकल मंगल स्वरूपा, हो ॥२७-३२॥ हे

१क. ०न्दूरबिन्दुशो०। २. रासे सं०। ३. क. राधिता। ४क. ०साऽज्ञाय भी०।

सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य निलयेऽधुना । शिवे शिवास्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके ॥३३॥
सरस्वती च सावित्री वेदसूर्ब्रह्मणः प्रिया । राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च ॥३४॥
परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी । त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥३५॥
त्वं विद्या योषितः सर्वाः सर्वेषां बिजरूपिणी । छाया सूर्यस्य चन्द्रस्य रोहिणी सर्वमोहिनी ॥३६॥
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । वरुणानी जलेशस्य वायोः स्त्री प्राणवल्लभा ॥३७॥
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुशीला च नैर्ऋतस्य च कैटभी ॥३८॥
ऐशानी स्याच्छशिकला शतरूपा मनोः प्रिया । देवहूतिः कर्दमस्य वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥३९॥
लोपामुद्राऽप्यगस्त्यस्य देवमाताऽदितिस्तथा । अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारा वसुंधरा ॥४०॥
गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां या सरिद्वरा । एताः सर्वाश्च या ह्यन्या सर्वास्त्वत्कलयाऽम्बिके ॥४१॥
गृहलक्ष्मीर्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वं गायत्री ब्राह्मणस्य च ॥४२॥
सतां [1]सत्त्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा । ज्योतीरूपा निर्गुणस्य शक्तिस्त्वं सगुणस्य च ॥४३॥
सूर्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे ॥४४॥
त्वं भूमौ गन्धरूपा चाप्याकाशे शब्दरूपिणी । क्षुत्पिपासादयस्त्वं च जीविनां सर्वशक्तयः ॥४५॥
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी । स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वा ज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम् ॥४६॥

इस समय तुम शिव के भवन में समस्त मंगलों का बीज हो। तुम शिव में शिवास्वरूप, नारायण के यहाँ लक्ष्मी, और ब्रह्मा के यहाँ सरस्वती तथा वेद-जननी सावित्री हो। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण की तुम राधा हो, परमानन्दरूप की परमानन्दरूपिणी हो। तुम्हारी ही कलाओं के अंशांश से देवों की पत्नियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥३३-३५॥ तुम विद्या, सभी स्त्रियाँ और सबकी बीज रूपा हो। तुम सूर्य की छाया और चन्द्रमा की रोहिणी हो, जो सबको मोहित करती है। तुम इन्द्र की इन्द्राणी, कामदेव की कामिनी रति, वरुण की वरुणानी एवं वायु की प्राणवल्लभा स्त्री हो ॥३६-३७॥ अग्नि की प्रिया स्वाहा, कुबेर की सुन्दरी, यम की सुशीला, नैर्ऋत की कैटभी, शंकर की शशिकला, मनु की प्रिया शतरूपा,कर्दम की देवहूति, वसिष्ठ की अरुन्धती, अगस्त्य की लोपामुद्रा, देवों की माता अदिति, गौतम की अहल्या और सब की आधार वसुन्धरा (पृथ्वी) हो। हे अम्बिके ! पृथ्वी पर गंगा, तुलसी और श्रेष्ठ नदियाँ जो हैं वे सब तथा अन्य समस्त तुम्हारी कला से उत्पन्न हुई हैं ॥३८-४१॥ मनुष्यों के घर में गृहलक्ष्मी, राजाओं की राजलक्ष्मी, तपस्वी जनों की तपस्या, ब्राह्मण की गायत्री, सज्जनों की सत्त्वस्वरूपा, असज्जनों को कलहबीज, निर्गुण की ज्योतिरूप, सगुण की शक्ति, सूर्य की प्रभा, अग्नि की दाहिका, जल में शैत्य रूप, चन्द्र में शोभा रूप, पृथिवी में गन्ध-रूप, आकाश में शब्द रूप और जीवों की भूख-प्यास आदि समस्त शक्तियाँ तुम्हीं हो ॥४२-४५॥ संसार में सर्वबीजरूप और साररूप एवं विद्वानों की स्मृति, मेधा, बुद्धि और ज्ञानशक्ति हो ॥४६॥ कृष्ण ने शिव

---

१ क. सत्यस्व० ।

कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा। शूलिने कृपया सा त्वं यया मृत्युंजयः शिवः ॥४७॥
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्त्रिविधाश्च याः। ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते ॥४८॥
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तो धाता प्रकम्पितः। स्तुत्वा मुक्तश्च यां देवीं तां मूर्ध्ना प्रणमाम्यहम् ॥४९॥
मधुकैटभयोर्युद्धे त्राताऽसौ विष्णुरीश्वरीम्। बभूव शक्तिमान्स्तुत्वा तां दुर्गां प्रण० ॥५०॥
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे। यां तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रण० ॥५१॥
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शंभुः समुत्थितः। जघान त्रिपुरं स्तुत्वा तां दुर्गां प्रण० ॥५२॥
यदाज्ञया वाति वातः सूर्यस्तपति संततम्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रण० ॥५३॥
यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद्भ्रमति वेगतः। मृत्युश्चरति जन्तूनां तां दुर्गां प्रण० ॥५४॥
स्रष्टा सृजति सृष्टिं च पाता पाति यदाज्ञया। संहर्ता संहरेत्काले तां दुर्गां प्रण० ॥५५॥
ज्योतिःस्वरूपो भगवाञ्छ्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम्। यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्तुं नमामि ताम् ॥५६॥
रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे। शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥५७॥
इत्युक्त्वा परशुरामश्च नत्वा तां च रुरोद ह। तुष्टा दुर्गा संभ्रमेण चाभयं च वरं ददौ ॥५८॥
अमरो भव हे पुत्र वत्स सुस्थिरतां व्रज। शर्वप्रसादात्सर्वत्र जयोऽस्तु तव संततम् ॥५९॥

को कृपया जो सर्वज्ञान की जननी विद्या प्रदान की, जिससे शिव मृत्युञ्जय हो गये हैं, वह तुम्ही हो ॥४७॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सृष्टि, पालन और संहार ये तीन प्रकार की शक्तियाँ तुम्हीं हो, अतः तुम्हें नमस्कार है ॥४८॥ मधुकैटभ के भय से ब्रह्मा त्रस्त होकर काँप गये, फिर वे जिसकी स्तुति करने से मुक्त हुए उस देवी को मैं शिर से प्रणाम कर रहा हूँ ॥४९॥ मधुकैटभ के युद्ध के समय जिस ईश्वरी की स्तुति करके त्राता विष्णु शक्तिमान् हुए,उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५०॥ त्रिपुर के महायुद्ध में रथ समेत शिव के गिर जाने पर देवों ने जिस देवी की स्तुति की उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५१॥ विष्णु ने स्वयं वृष (बैल) रूप बनकर शिव को उठाया, पश्चात् शम्भु ने जिसकी स्तुति कर त्रिपुर का हनन किया उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५२॥ जिसकी आज्ञा से वायु चलता है, सूर्य सतत तपता है, इन्द्र वर्षा करता है और अग्नि जलाता है, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५३॥ जिसकी आज्ञा वश काल निरन्तर वेग से भ्रमण किया करता है और मृत्यु जन्तुओं में विचरण करता है, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५४॥ जिसकी आज्ञा से स्रष्टा सृष्टि का सर्जन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिव संहार करते हैं, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूं ॥५५॥ ज्योतिःस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं निर्गुण हैं और जिस शक्ति के बिना सृष्टि करने में समर्थ नहीं होते हैं उस देवी को नमस्कार करता हूँ ॥५६॥ हे संसार की माता ! मेरी रक्षा करो। मेरी रक्षा करो। मेरा अपराध क्षमा करो, बच्चों के अपराध से माता कहाँ कुपित होती है ? ॥५७॥ इतना कहकर नमस्कार करके परशुराम रोदन करने लगे, जिससे सहसा दुर्गा ने प्रसन्न होकर उन्हें अभय और वर प्रदान किया ॥५८॥ हे पुत्र ! अमर हो, हे वत्स ! सुस्थिर हो और सबके प्रसाद से तुम्हारा सर्वत्र जय हो ॥५९॥ सबके अन्तरात्मा भगवान् निरन्तर प्रसन्न रहें, कृष्ण में तुम्हारी

सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टः स्यात्संततं हरिः । भक्तिर्भवतु ते कृष्णे शिवदे च शिवे गुरौ ॥६०॥
इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती । तं हन्तुं न हि शक्ता वा रुष्टा वा सर्वदेवताः ॥६१॥
श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्यो वै शंकरस्य च । गुरुपत्नीं स्तौषि यस्मात्कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः ॥६२॥
अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्ता वा निरङ्कुशाः ॥६३॥
चन्द्रमा बलवांस्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो । तेषां तारागणा रुष्टाः किं कुर्वन्ति च दुर्बलाः ॥६४॥
यस्मै तुष्टः पालयति नरदेवो महान्सुखी । तस्य किंवा करिष्यन्ति रुष्टा भृत्याश्च दुर्बलाः ॥६५॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामाय चाऽऽशिषम् । जगामान्तःपुरं तूर्णं हर्षशब्दो बभूव ह ॥६६॥
स्तोत्रं वै कण्वशाखोक्तं पूजाकाले च यः पठेत् । यात्राकाले तथा प्रातर्वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम् ॥६७॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत् । विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी चाऽप्नुयात्प्रजाः ॥६८॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं नष्टवित्तो धनं लभेत् । यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा ॥६९॥
तस्मै तुष्टश्च वरदः स्तोत्रराजप्रसादतः । दस्युग्रस्तः [1]फणिग्रस्तः शत्रुग्रस्तो भयानकः ॥७०॥
व्याधिग्रस्तो भवेन्मुक्तः स्तोत्रस्मरणमात्रतः । राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने ॥७१॥
जलराशौ निमग्नश्च मुक्तस्तत्स्मृतिमात्रतः । स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे ॥७२॥

भक्ति हो और श्रीकृष्ण एवं कल्याणप्रद गुरु शिव में भक्ति हो ॥६०॥ क्योंकि इष्टदेव और गुरु में जिसकी निरन्तर निश्चल भक्ति बनी रहती है, उसे समस्त देवता के रुष्ट रहने पर भी कोई मार नहीं सकता है ॥६१॥ श्रीकृष्ण के भक्त और शंकर के शिष्य होकर तुम गुरुपत्नी की स्तुति कर रहे हो, अतः तुम्हें मारने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६२॥ अहो ! कृष्ण के भक्तों का कहीं भी अशुभ नहीं होता । अन्य देवता के जो भक्त हैं, वे या तो भक्त नहीं हैं या निरंकुश हैं ॥६३॥ हे भृगो ! जिन भाग्यवानों पर चन्द्रमा प्रसन्न हों और तारागण रुष्ट हों तो दुर्बल तारे उनका क्या बिगाड़ सकते हैं ? ॥६४॥ राजा प्रसन्न चित्त से जिसका पालन करता है, वह महासुखी होता है । यदि सेवक वर्ग उस पर असन्तुष्ट रहें तो वे दुर्बल कर ही क्या सकते हैं ? ॥६५॥ इतना कहकर पार्वती ने प्रसन्न होकर राम को आशीर्वाद दिया और शीघ्रता से अपने अन्तःपुर चली गयीं । तदनन्तर हर्ष का शब्द होने लगा ॥६६॥ इस काण्वशाखोक्त स्तोत्र का, जो पूजा समय, यात्रा समय और प्रातःकाल पाठ करता है, उसे निश्चित अभीष्ट प्राप्त होता है ॥६७॥ पुत्र चाहने वाले को पुत्र, कन्यार्थी को कन्या, विद्यार्थी को विद्या, प्रजार्थी को प्रजा, नष्ट राज्य वाले को राज्य और नष्ट धन वाले को धन की प्राप्ति होती है ॥६८½॥ जिसके ऊपर गुरुदेव, राजा या बन्धुगण रुष्ट रहते हैं, इस स्तोत्रराज के प्रसाद से वे सब उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। लुटेरों से घिरा, सर्पग्रस्त, शत्रुओं से घिरा, भयानक और रोगी इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है। राजदरबार, श्मशान, कारागृह (जेल), बन्धन तथा जल-राशि में निमग्न व्यक्ति इसके स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है। पति, पुत्र या मित्र से घोर विरोध होने पर इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से उसे निश्चित ही अभीष्ट-सिद्धि मिलती है ॥६९-७२½॥ एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर जो स्त्री इस

---

१ क. ग्रहग्र०।

स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम् । कृत्वा हविष्यं वर्षं च स्तोत्रराजं शृणोति या ॥७३॥
भक्त्या दुर्गां च संपूज्य महावन्ध्या प्रसूयते । लभते सा दिव्यपुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् ॥७४॥
असौभाग्या च सौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत् । नवमासं काकवन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः ॥७५॥
स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम् । कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या ॥७६॥
घटे संपूज्य दुर्गां च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामकृतदुर्गास्तोत्रं
नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

स्तुत्वा तां परशुरामोऽसौ हर्षसंफुल्लमानसः । स्तोत्रेण हरिणोक्तेन स तुष्टाव गणाधिपम् ॥१॥
पूजां चकार भक्त्या च नैवेद्यैर्विविधैरपि । धूपैर्दीपैश्च गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं विना ॥२॥
संपूज्य भ्रातरं भक्त्या स रामः शंकराज्ञया । गुरुपत्नीं गुरुं नत्वा गमनं कर्तुमुद्यतः ॥३॥

स्तोत्रराज का श्रवण करती है और दुर्गा की पूजा करती है, वह महावन्ध्या हो जाने पर भी बच्चा उत्पन्न करती है। उसे ज्ञानी, चिरजीवी और दिव्य पुत्र की प्राप्ति होती है ॥७३-७४॥ छह मास तक श्रवण करने से दुर्भगा सौभाग्य प्राप्त करती है। नव मास तक भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रराज के सुनने से काकवन्ध्या और मृतवत्सा भी पुत्र प्राप्त करती है ॥७५॥ जो स्तोत्रराज का श्रवण करती है, वह निश्चित ही पुत्र पाती है। कन्या जनने वाली स्त्री पुत्रहीन होने पर पांच मास तक इसका श्रवण और कलश में दुर्गापूजन करके निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त करती है ॥७६-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुरामकृत
दुर्गा-स्तोत्र-वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

अध्याय ४६

गणेश और तुलसी का संवाद तथा फलश्रुति

नारायण बोले—परशुराम ने प्रसन्नचित्त होकर पार्वती की स्तुति के उपरान्त भगवान् के कहे हुए स्तोत्र द्वारा गणेश की भी स्तुति की ॥१॥ और तुलसी के बिना विविध नैवेद्य द्वारा भक्तिपूर्वक धूप, दीप, गन्ध एवं पुष्प से उनकी पूजा की ॥२॥ शंकर की आज्ञा से राम ने भ्राता गणेश को पूजकर गुरुपत्नी और गुरु को नमस्कार करके गृह की ओर प्रस्थान किया ॥३॥

नारद उवाच

पूजां भगवतश्चक्रे रामो गणपतेर्यदा। नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैस्तुलसीं च विना कथम् ॥४॥
तुलसी सर्वपुष्पाणां मान्या धन्या मनोहरा। कथं पूतां सारभूतां न गृह्णाति गणेश्वरः ॥५॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। ब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं निगूढं च मनोहरम् ॥६॥
एकदा तुलसी देवी प्रोद्भिन्नवयौवना। तीर्थं भ्रमन्ती तपसा नारायणपरायणा ॥७॥
ददर्श गङ्गातीरे सा गणेशं यौवनान्वितम्। अतीव सुन्दरं शुद्धं सस्मितं पीतवाससम् ॥८॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। ध्यायन्तं कृष्णपादाब्जं जन्ममृत्युजरापहम् ॥९॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्। सुरूपहार्यं निष्कामं सकामा तमुवाच ह ॥१०॥

तुलस्युवाच

अहो ध्यायसि किं देव शान्तरूप गजानन। कथं लम्बोदरो देहो गजवक्त्रं कथं तव ॥११॥
एकदन्तः कथं वक्त्रे वदामुत्र च कारणम्। त्यज ध्यानं महाभाग सायंकाल उपस्थितः ॥१२॥
इत्युक्त्वा तुलसी देवी प्रजहास पुनः पुनः। परं चेतसि दग्धा सा कामबाणैः सुदारुणैः ॥१३॥

नारद बोले—राम ने विविध नैवेद्य और पुष्पों से भगवान् गणेश्वर देव की पूजा की, किन्तु तुलसी के बिना उनकी पूजा कैसे सम्पन्न हुई? क्योंकि सभी पुष्पों में तुलसी मान्या, धन्या एवं मनोहरा है। तब सारभूत (तुलसी) को गणेश्वर क्यों नहीं ग्रहण करते हैं? ॥४-५॥

नारायण बोले—हे नारद! मैं एक प्राचीन इतिहास, जिसमें ब्रह्म कल्प का निगूढ़ एवं मनोहर वृत्तान्त भरा पड़ा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥६॥ एक बार तुलसी देवी अपने नवयौवन में तप के व्याज से नारायण का भजन करती हुई तीर्थों में भ्रमण कर रही थीं। अनन्तर गंगा के तट पर नवयौवनपूर्ण गणेश को उन्होंने देखा, जो अत्यन्त सुन्दर, शुद्धचित्त, मन्दहास करते हुए एवं पीताम्बर पहने हुए स्थित थे ॥७–८॥ सर्वांग में चन्दन का लेप लगाये और रत्नों के भूषणों से भूषित हुए गणेश भगवान् कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान कर रहे थे, जो जन्म, मृत्यु और जरा का अपहर्ता है ॥९॥ जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, योगीन्द्रों के गुरुओं के गुरु व अत्यन्त सुन्दर एवं निष्काम उन्हें देखकर कामातुर तुलसी ने उनसे कहा ॥१०॥

तुलसी बोली—हे देव गजानन! शान्त रूप से किसका ध्यान कर रहे हो? तुम्हारी देह में यह लम्बा उदर और गजमुख कैसे हो गया? ॥११॥ हे महाभाग! तुम्हारे मुख में एक ही दाँत क्यों है? इसका कारण बताओ, अब सायंकाल हो रहा है, ध्यान करना बन्द करो ॥१२॥ इतना कहकर तुलसी देवी बार-बार हँसने लगीं, किन्तु मन में भीषण कामबाणों से वह दग्ध हो रही थी ॥१३॥ हे मुने! अनन्तर गणेश

गणेशस्य प्रधानाङ्गे दत्त्वा किंचिज्जलं मुने। जघान तर्जन्यग्रेण निष्पन्दं कृष्णमानसम् ॥१४॥
बभूव ध्यानभग्नं च तस्य नारद चेतनम्। दुःखं च ध्यानभेदेन तद्विच्छेदो हि शोकदः ॥१५॥
ध्यानं त्यक्त्वा हरिं स्मृत्वा चापश्यत्कामिनीं पुरः। नवयौवनसंपन्नां सस्मितां कामपीडिताम् ॥१६॥
लम्बोदरश्च तां दृष्ट्वा परं विनयपूर्वकम्। उवाच सस्मितः शान्तः शान्तां कामातुरां वशी ॥१७॥

गणेश्वर उवाच

का त्वं वत्से कस्य कन्या मातर्मां ब्रूहि किं शुभे। पापदोऽशुभदः शश्वद्ध्यानभङ्गस्तपस्विनाम् ॥१८॥
कृष्णः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नं कृपानिधिः। [1]तद्ध्यानभङ्गजाद्दोषान्नाशुभं स्यात्तु ते शुभे ॥१९॥
गणेशवचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा। सस्मितं सकटाक्षं च देवं मधुरया गिरा ॥२०॥

तुलस्युवाच

धर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढा च तपस्विनी। तपस्या मे स्वामिनोऽर्थे त्वं स्वामी भव मे प्रभो ॥२१॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन्। तामुवाच महाप्राज्ञः प्राज्ञीं मधुरया गिरा ॥२२॥

के प्रधान अंग में उसने थोड़ा-सा जल डालकर अपनी तर्जनी के अग्र भाग से उनको धक्का दिया, जो भगवान् कृष्ण में निश्चल मन लगाये हुए थे ॥१४॥ हे नारद! इससे उनका ध्यान भंग हो गया और ध्यान भङ्ग होने से उन्हें दुःख हुआ। क्योंकि ध्यान का टूटना शोकप्रद होता है ॥१५॥ ध्यान त्यागकर हरि का स्मरण करके उन्होंने सामने एक कामिनी स्त्री को देखा, जो नवयौवन से सम्पन्न, मन्द मुसुकान करती हुई काम-पीड़ित हो रही थी ॥१६॥ संयमी लम्बोदर ने मन्दहास समेत शान्त भाव से उसे देखकर विनयपूर्वक उस कामातुरा से कहा ॥१७॥

गणेश्वर बोले—हे वत्से! तुम कौन हो? किस की कन्या हो? हे मातः! हे शुभे! मुझे बताओ। तपस्वियों का निरन्तर ध्यान भंग करना पाप और अशुभ फल देने वाला होता है ॥१८॥ हे शुभे! कृष्ण तुम्हारा कल्याण करें, विघ्न को कृपा निधान नष्ट करें, उनके ध्यान भंग जनित दोष से तुम्हारा अशुभ न हो ॥१९॥ गणेश की बातें सुनकर कामातुरा तुलसी ने मन्दहास एवं उन पर कटाक्ष करती हुई अपनी मधुरवाणी द्वारा उस देव से कहा ॥२०॥

तुलसी बोली—हे प्रभो! मैं धर्मपुत्र की कन्या हूँ, अप्रौढ़ा और तपस्विनी हूँ, पति के लिए तप कर रही हूं, अतः तुम हमारे स्वामी बनो ॥२१॥ तुलसी की बात सुनकर महाविद्वान् गणेश ने भगवान् का स्मरण करते हुए, उस विदुषी से मधुरवाणी द्वारा कहा ॥२२॥

१क. मद्ध्या०।

गणेश उवाच

हे मातर्नास्ति मे वाञ्छा घोरे दारपरिग्रहे । दारग्रहो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥२३॥
हरिभक्तेर्व्यवायश्च तपस्यानाशकारकः । मोक्षद्वारकपाटश्च भवबन्धनपाशकः ॥२४॥
गर्भवासकरः शश्वत्तत्त्वज्ञाननिकृन्तकः । संशयानां समारम्भो यस्त्याज्यो वृषलैरपि ॥२५॥
गेहोऽहंकरणानां च सर्वमायाकरण्डकम् । साहसानां समूहश्च दोषाणां च विशेषतः ॥२६॥
निवर्तस्व महाभागे पश्यान्यं कामुकं पतिम् । कामुकेनैव कामुक्याः संगमो गुणवान्भवेत् ॥२७॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा कोपात्सा तं शशाप ह । दारास्ते भविताऽसाध्वी गणेश्वर न संशयः ॥२८॥
इत्याकर्ण्य सुरश्रेष्ठस्तां शशाप शिवात्मजः । देवि त्वमसुरग्रस्ता भविष्यसि न संशयः ॥२९॥
तत्पश्चान्महतां शापाद्वृक्षस्त्वं भवितेति च । महातपस्वीत्युक्त्वा तां विरराम च नारद ॥३०॥
शापं श्रुत्वा तु तुलसी सा रुरोद पुनः पुनः । तुष्टाव च सुरश्रेष्ठं स प्रसन्न उवाच ताम् ॥३१॥

गणेश्वर उवाच

पुष्पाणां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे । कलांशेन महाभागे स्वयं नारायणप्रिया ॥३२॥
प्रिया त्वं सर्वदेवानां श्रीकृष्णस्य विशेषतः । पूता विमुक्तिदा नृणां मया भोग्या न नित्यशः ॥३३॥

गणेश बोले—हे मातः ! स्त्री ग्रहण (विवाह) करना भयंकर है, अतः मुझे इसकी इच्छा नहीं है। विवाह कभी भी सिवाय दुःख के सुखकर नहीं होता है ॥२३॥ इससे हरिभक्ति का व्यवधान तथा तप का नाश होता है और यह मोक्ष द्वार का कपाट (किवाड़) तथा संसार बन्धन का फांस रूप है ॥२४॥ गर्भवास का निरन्तर तत्त्वज्ञान का नाशक कारण, और संशयो का आरंम्भक होता है, जिसे शूद्र को भी त्याग देना चाहिए । यह अहंकारों का घर, समस्त माया की पिटारी, साहसों का समूह एवं विशेषकर दोषों का समूह है ॥२५-२६॥ अतः हे महा ! भागे तुम लौट जाओ औरकिसी अन्य कामुक पति को ढूंढ़ो, क्योंकि कामुक का ही कामुकी के साथ संगम होना हितकर होता है ॥२७॥ ऐसी बातें सुनकर उसने क्रोधवश उन्हें शाप दिया कि हे गणेश्वर ! तुम्हें व्यभिचारिणी स्त्री मिलेगी, इसमें संशय नहीं ॥२८॥ इतना सुनकर शिवपुत्र गणेश ने भी उसे शाप दिया कि देवि ! तुम असुर के अधीन रहोगी, इसमें संशय नहीं ॥२९॥ उसके अनन्तर बड़ों के शाप से तुम्हें वृक्ष होना पड़ेगा। इतना कहकर, हे नारद !, वे महातपस्वी चुप हो गये ॥३०॥ शाप सुनकर तुलसी बार-बार रोदन करने लगी और उस देवश्रेष्ठ की स्तुति की। तब प्रसन्न होकर गणेश ने उससे कहा ॥३१॥

गणेश्वर बोले—हे मनोरमे ! तुम पुष्पों में सारभूत (तुलसी) होगी, और हे महाभागे !, कलांश द्वारा स्वयं नारायण की प्रिया भी ॥३२॥ समस्त देवों तथा विशेषकर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिया बनोगी। तुम पवित्र होगी एवं मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करोगी, पर हम कभी भी (तुम्हारा) उपभोग नहीं करेंगे ॥३३॥ देवश्रेष्ठ गणेश

इत्युक्त्वा तां सुरश्रेष्ठो जगाम तपसे पुनः। हरेराराधनव्यग्रो बदरीसंनिधिं ययौ ॥३४॥
जगाम तुलसीदेवी हृदयेन विदूयता। निराहारा तपश्चक्रे पुष्करे लक्षवर्षकम् ॥३५॥
पश्चान्मुनीन्द्रशापेन गणेशस्य च नारद। सा प्रिया शङ्खचूडस्य बभूव सुचिरं मुने ॥३६॥
ततः शंकरशूलेन स ममारासुरेश्वरः। सा कलांशेन वृक्षत्वं ययौ नारायणप्रिया ॥३७॥
कथितश्चेतिहासस्ते श्रुतो धर्ममुखात्पुरा। मोक्षप्रदश्च सारश्च पुराणेन प्रकीर्तितः ॥३८॥
ततः परशुरामोऽसौ जगाम तपसे वनम्। प्रणम्य शंकरं दुर्गां संपूज्य च गणेश्वरम् ॥३९॥
पूजितो वन्दितः सर्वैः सुरेन्द्रमुनिपुंगवैः। पार्वतीशिवसांनिध्ये सुखं तस्थौ गणेश्वरः ॥४०॥
इदं गणपतेः खण्डं यः शृणोति समाहितः। स राजसूययज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥४१॥
अपुत्रो लभते पुत्रं श्रीगणेशप्रसादतः। धीरं वीरं च धनिनं गुणिनं चिरजीविनम् ॥४२॥
यशस्विनं पुत्रिणं च विद्वांसं सुकवीश्वरम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरं दातारं सर्वसंपदाम् ॥४३॥
सुशीलं[1] च सदाचारं प्रशंस्यं वैष्णवं लभेत्। अहिंसकं दयालुं च तत्त्वज्ञानविशारदम् ॥४४॥
भक्त्या गणेशं संपूज्य वस्त्रालंकारचन्दनैः। श्रुत्वा गणपतेः खण्डं महावन्ध्या प्रसूयते ॥४५॥

उससे इतना कहकर भगवान् की आराधना में व्यग्र होने के कारण पुनः तप करने के लिए बदरिकाश्रम के निकट चले गये और हार्दिक दुःख का अनुभव करती हुई तुलसी भी पुष्कर चली गयी। उसने वहाँ एक लाख वर्षतक निराहार रहकर तप किया ॥३४-३५॥ हे नारद! हे मुने! मुनिश्रेष्ठ गणेश के शापवश वह चिरकाल तक शंखचूड़ की प्रिया रही ॥३६॥ पश्चात् शिव के शूल से उसका निधन होने पर वह नारायण की प्रिया तुलसी कलांश से वृक्ष होकर उत्पन्न हुई ॥३७॥ मैंने धर्म के मुख से जिस प्रकार यह इतिहास सुना था, तुम्हें सुना दिया, जो पुराण में प्रसिद्ध, मोक्षप्रद तथा सारभूत है ॥३८॥ अनन्तर वे परशुराम गणेश की पूजा और शंकर एवं दुर्गा को प्रणाम करके तप के लिए वन चले गये ॥३९॥ समस्त सुरनायकों और मुनि-श्रेष्ठों द्वारा पूजित एवं वन्दित होकर गणेश भी पार्वती शिव के समीप सुखपूर्वक रहने लगे ॥४०॥ इस प्रकार सावधान होकर इस गणपति खण्ड का जो श्रवण करता है, वह निश्चित रूप से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। श्री गणेश के प्रसाद से पुत्रहीन व्यक्ति ऐसे पुत्र की प्राप्ति करता है, जो धीर, वीर, धनी, गुणी, चिरजीवी, यशस्वी, पुत्री, विद्वान्, कवीश्वर, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, समस्त सम्पत्ति के दाता, सुशील, सदाचारी, प्रशंसनीय, वैष्णव, अहिंसक, दयालु, और तत्त्वज्ञान में निपुण होता है ॥४१-४४॥ गणेश की भक्तिपूर्वक वस्त्राभूषण एवं चन्दन से पूजा करके गणपतिखण्ड के श्रवण करने पर महावन्ध्या भी प्रसव करती है। हे ब्रह्मन्! मृतवत्सा और काकवन्ध्या निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त

---

१ क. सुपवित्रं स०।

मृतवत्सा काकवन्ध्या ब्रह्मन्पुत्रं लभेद्ध्रुवम् । अदूष्यदूषणपरा शुद्धा चैव लभेत्सुतम् ॥४६॥
सपूर्णं ब्रह्मवैवर्तं श्रुत्वा यल्लभते फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः श्रुत्वेदं खण्डमुत्तमम् ॥४७॥
वाञ्छां कृत्वा तु मनसि शृणोति परमास्थितः । तस्मै ददाति सर्वेष्टं शूरश्रेष्ठो गणेश्वरः ॥४८॥
श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय यत्नतः । स्वर्णयज्ञोपवीतं च श्वेतच्छत्रं च माल्यकम् ॥४९॥
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकान् । परिपक्वफलान्येव देशकालोद्भवानि च ॥५०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारदनारायणसंवादे परशुरामागमगनै-तत्खण्डश्रवणफलवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

समाप्तमिदं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणस्य तृतीयं महागणपतिखण्डम्

करती हैं। एवं दूषण रहित के ऊपर दोष लगानेवाली स्त्री भी शुद्ध होकर पुत्र प्राप्त करती है ॥४५-४६॥ मनुष्य को समस्त ब्रह्मवैवर्त पुराण के सुनने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल इस उत्तम खण्ड के सुनने पर भी प्राप्त होता है ॥४७॥ जो मन में अभिलाषा रखकर परमश्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे श्रेष्ठ गणेश्वर समस्त अभीष्ट प्रदान करते हैं ॥४८॥ गणपतिखण्ड सुनकर विघ्न के नाशार्थ सुवर्ण का यज्ञोपवीत, श्वेत छत्र, माला, तिल के लड्डू एवं देश-काल के अनुसार उत्पन्न फल समेत स्वस्तिक (मंगल द्रव्य) वाचक को समर्पित करना चाहिए ॥४९-५०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम के आगमन तथा इस खण्ड के सुनने का फल वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥

⊙⊙

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण का तीसरा महागणपतिखण्ड समाप्त

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

पूर्वभागः

(ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणपतिखण्ड)

[हिन्दी अनुवाद सहित]

⊙

अनुवादक एवं सम्पादक

तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

⊙

अनुवादक

स्वर्गीय पण्डित बाबूराम उपाध्याय

⊙

शक १९०३ : सन् १९८१

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग